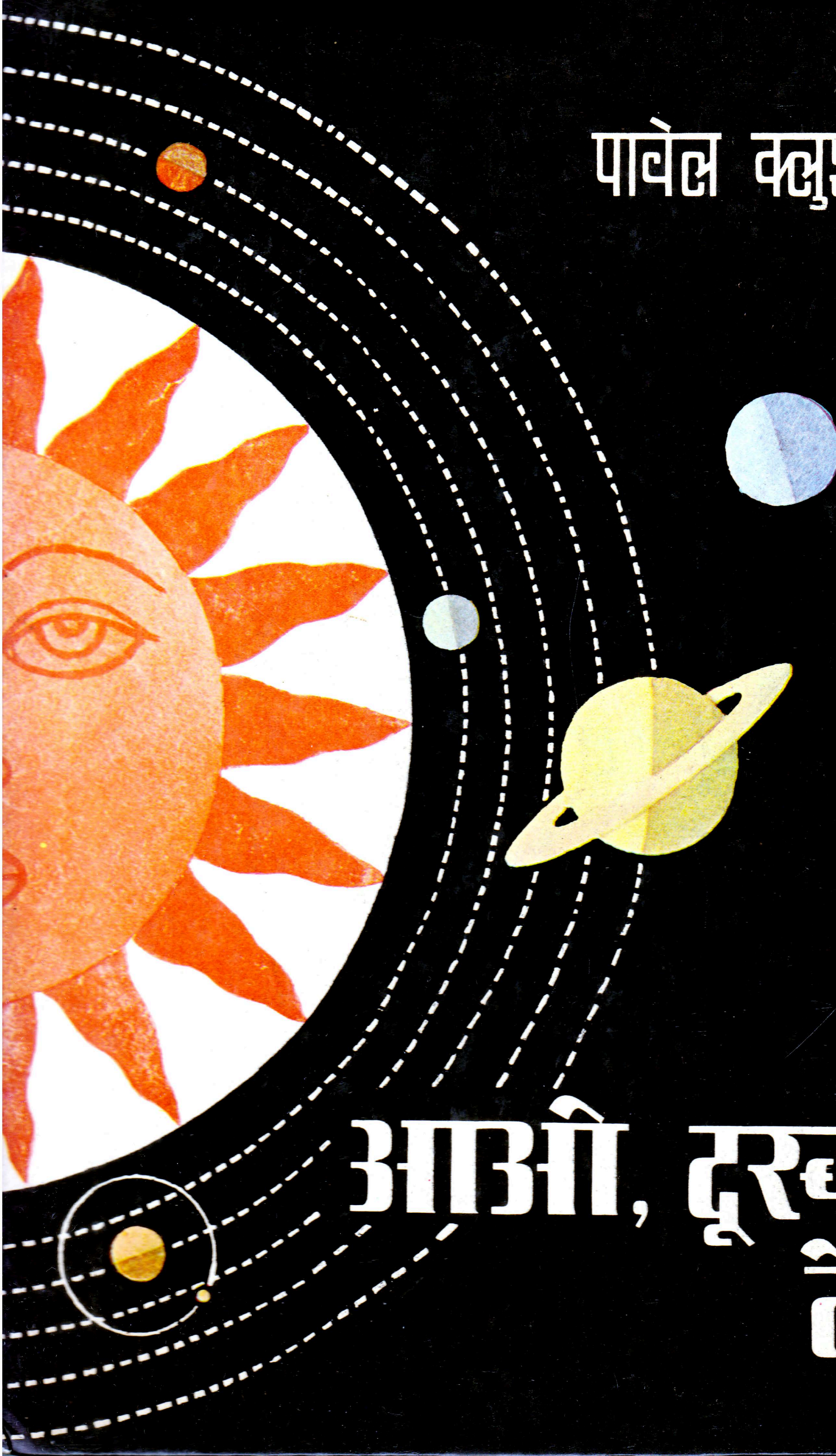
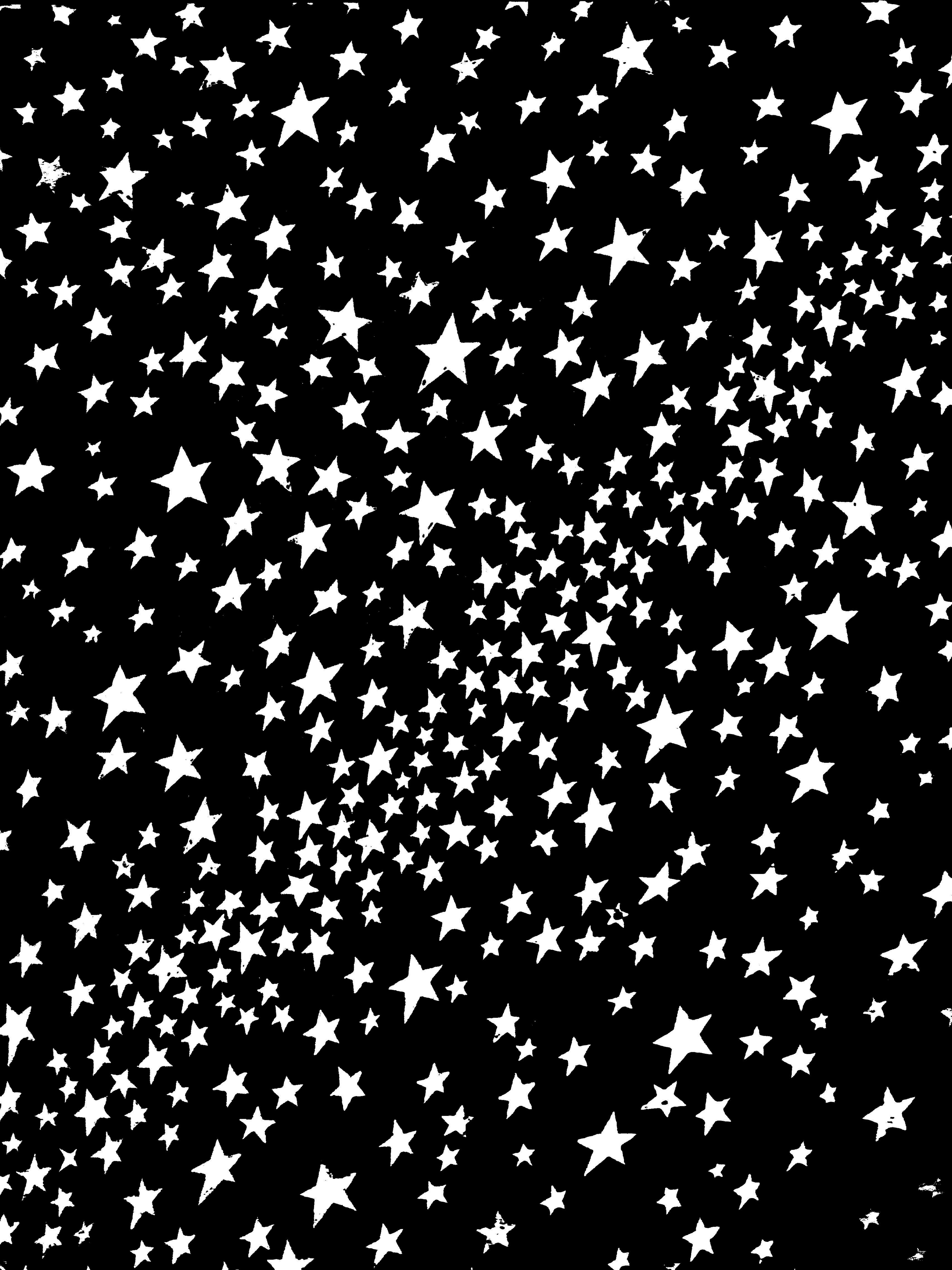
पावेल क्लुशांत्सेव

आओ, दूरबीन देखें





प्यारे बच्चो !

तुम यह जानना चाहते हो न कि पृथ्वी का छोर कहां है, पृथ्वी के चारों ओर क्या है, चंद्रमा और तारे कितनी दूर हैं, तारे इतने सुंदर क्यों हैं, गेंद ज़मीन पर ही क्यों गिरती है, गर्मियों में धूप में अधिक तपिश क्यों होती है, चंद्रमा फांक जैसा क्यों दीखता है तथा कौन-कौन से और ग्रह हैं?

इन सब तथा अन्य कई प्रश्नों का उत्तर तुम इस पुस्तक में पाओगे।



पावेल क्लुशांत्सेव



आओ, दूरबीन देखें



रादुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

अनुवादक: योगेन्द्र नागपाल

चित्र: ये० वोइशविलो, ब० कलाऊशिन,
ब० स्तारोदूबत्सेव

आवरण, मुक्त और मुख पृष्ठ: यू० किसेल्योव

П. Клушанцев

О ЧЕМ РАССКАЗАЛ ТЕЛЕСКОП

На хинди

P. Klushantsev

ALL ABOUT THE TELESCOPE

In Hindi

सोवियत संघ में प्रकाशित

ISBN 5-05-000981-2



पृथ्वी का छोर कहां है?

वसंत ऋतु में खुले मैदान में कितना अच्छा लगता है! फूलों की सुगंध आती है; हवा बिल्कुल साफ़ होती है और चारों ओर दूर-दूर तक सब कुछ दिखायी देता है।

अगर किसी टीले पर चढ़ जाओ तो और भी दूर तक दिखायी देता है। दूर वहां खेत खत्म हो रहे हैं, उनके आगे जंगल है। पास ही झील चमक रही है, बल खाती राह चली गयी है। वहां आगे फिर खेत हैं, मैदान हैं। उनके आगे, शायद, फिर से जंगल होगा, सड़कें, झीलें, नदियां, नगर होंगे।

लगता है कि पृथ्वी एक बहुत ही बड़े सपाट थाल जैसी है। लगता है न?

ऊपर से आकाश ने एक विराट छत की भांति इस थाल को ढक रखा है। दिन में यह छत आसमानी होती है, रात में काली और तब उस पर तारे चमकने लगते हैं, जैसे कि बहुत दूर कहीं जलती बत्तियां।

लगता है कि यह छत विशाल गुम्बद है और इस गुम्बद के सिरे सपाट थाल पर – पृथ्वी पर टिके हुए हैं। और यदि हम देर तक पृथ्वी पर एक ही दिशा में चलते जायें तो उस स्थान तक पहुंच जायेंगे, जहां "धरती और आकाश मिलते हैं"। तुमने शायद वह बौने घोड़े की कहानी सुनी हो – कैसे वह इवान को अपनी पीठ पर बिठाकर वहां ले गया जहां धरती और आकाश मिलते हैं और बस फिर इवान आकाश पर उड़ने लगा।

कितना अच्छा होता अगर सचमुच ही ऐसा होता। तुम पृथ्वी पर चलते जा रहे हो, फिर पहाड़ पर चढ़ जाते हो, कोई छोटी सी नाली लांघते हो और आगे बादलों पर चलने लगते हो। ऊपर से जंगलों-मैदानों का नज़ारा देखते जाओ, उनके बीच अपना घर ढूंढो।

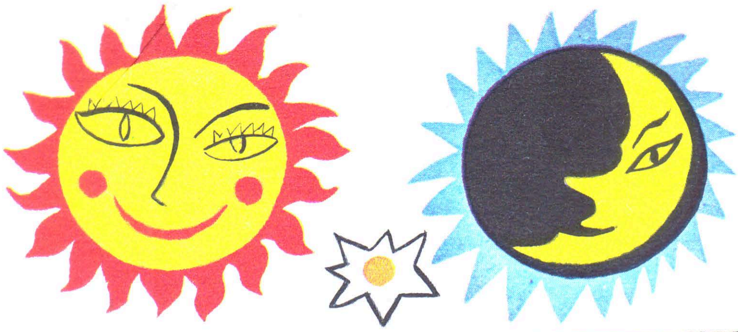
अफ़सोस, मगर ऐसा नहीं हो सकता।

लेकिन पुराने ज़माने में लोग सोचते थे कि यह संभव है। पूरी गंभीरता से वे ऐसा सोचते थे। उन्हें विश्वास था कि आकाश एक बहुत बड़ा उलटाया हुआ प्याला है, और पृथ्वी विराट थाल है, जिसका छोर भी है, जैसे कि हर थाल का होता है।

बेशक, उन्हें यह जानने का बहुत कौतूहल होता था कि वहां "पृथ्वी के छोर के पार", "आसमान के उस ओर" क्या है?

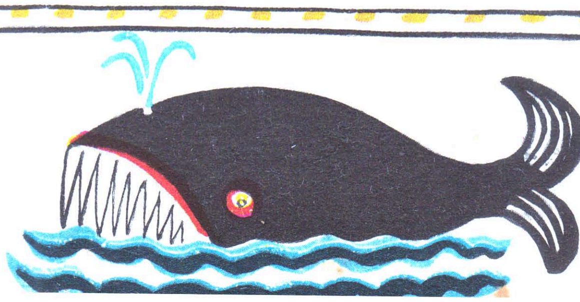
लेकिन बहुत दूर-दूर तक जाने पर भी लोगों को पृथ्वी का छोर कहीं दूर तक से नज़र नहीं आया।

तब लोगों ने यह सोचा कि हो न हो यह थाल,





बौना घोड़ा



जिस पर हम रहते हैं, अत्यधिक बड़ा है। शायद इसका छोर बहुत दूर कहीं, ऊंचे पहाड़ों, जंगलों, समुद्रों के पार है और बौने घोड़े पर सवार होकर ही वहां पहुंचा जा सकता है।

उधर लोगों के मन का कौतूहल भी शांत नहीं हो रहा था। वे सोचते थे – हर थाल किसी न किसी चीज़ पर टिका होता है। आखिर थाल यों अपने आप ही हवा में तो नहीं लटका हो सकता। यह तो हंसी की बात लगती है। सो पृथ्वी भी किसी चीज़ पर टिकी हुई है। लेकिन कैसी है उसकी टेक? यह किसी तरह पता ही न चलता था।

ऊपर से भूचाल भी आते थे। तब पृथ्वी डोलने लगती थी, पहाड़ चटखते और ढह जाते थे, समुद्र से भीमकाय लहरें उठती थीं। लोगों की दशा वैसी होती थी, जैसी रज़ाई पर बिलौटों की होगी, यदि तुम रज़ाई तले अचानक करवट बदल लो।

सो, लोगों ने सोचा कि पृथ्वी किन्हीं शक्तिशाली जीवों की पीठ पर टिकी हुई है। जब तक ये जीव सोते रहते हैं तब तक सब ठीक रहता है, लेकिन जैसे ही वे जागकर हिलने-डुलने लगते हैं, वैसे ही भूचाल आने लगता है।

अब लोगों ने तय किया कि पृथ्वी तीन विराट ह्वेलों पर टिकी हुई है। ह्वेल से बड़ा जीव तो संसार में और कोई है ही नहीं।

लेकिन यदि पृथ्वी ह्वेलों पर टिकी हुई है, तो ह्वेल किस पर टिके हुए हैं?

ह्वेलें समुद्र में तैरती हैं, लोग अपने ही सवाल का जवाब देते थे। ह्वेलें तो सदा तैरती ही रहती हैं न।

तो फिर समुद्र कहां फैला हुआ है?

पृथ्वी पर।

और पृथ्वी ह्वेलों पर?

कुछ बात बनती नहीं थी।

सो लोग कहने लगे: "पृथ्वी तीन ह्वेलों पर टिकी हुई है। बस, बात खत्म। अगर तुम्हें इतने पर संतोष नहीं होता तो जाओ खुद जाकर देख लो।"

अब तो ये कहानियां हमें हास्यास्पद लगती हैं, लेकिन तब लोग इन बातों में विश्वास करते थे। किसी को कुछ पता जो नहीं था। और किसी से वे पूछ भी नहीं सकते थे।

प्राचीन युग में लोग पृथ्वी पर बहुत दूर तक तो जा नहीं सकते थे। तब न सड़कें थीं, न मोटरगाड़ियां, न जहाज़, रेलगाड़ियों और हवाई जहाज़ों की तो बात

ही छोड़ो। इसलिए ह्वेलों की बात परखने के लिए "पृथ्वी के छोर" तक कोई नहीं पहुंच पाता था।

फिर भी धीरे-धीरे लोग यात्राएं करने ही लगे। ऊंटों पर बैठकर वे दूर ही दूर जाने लगे, बड़ी-बड़ी नावों में नदियों और समुद्रों में जाने लगे।

अब रास्ते से भटक न जायें इसके लिए लोग अपने पांवों तले नहीं, आसमान को देखने लगे। समुद्र में जहां चारों ओर पानी के अलावा और कुछ नहीं होता, रास्ता और कैसे ढूंढा जा सकता है? या फिर रेगिस्तान में? वहां भी चारों ओर बस रेत ही रेत होती है। सूर्य, चंद्रमा और तारे तो सभी जगह नज़र आते हैं – समुद्र में भी और रेगिस्तान में भी। उन्हें जंगल में भी देखा जा सकता है और पहाड़ों के बीच गहरे खड्डों के तले से भी। और वे सदा अपने स्थान पर ही होते हैं।

सूर्य, चंद्रमा और तारे आकाश पर सदा एक ही तरह से चलते हैं। ऐसा तो कभी नहीं होता कि सूर्य उलटी दिशा में, पश्चिम से पूर्व को चलने लगे; या फिर चंद्रमा उगे और आसमान पर एक ही जगह खड़ा हो जाये; या तारे अपनी जगह से हटकर कहीं और चले जायें। दिन प्रति दिन, वर्ष प्रति वर्ष सूर्य, चंद्रमा और तारे आकाश पर एक ही गति से चलते रहते हैं, जैसे कि घड़ी की सुइयां।

पृथ्वी पर चाहे कुछ भी हो – बारिश आये, आंधी आये, तूफ़ान आये – सूर्य, चंद्रमा और तारे आकाश पर एकसमान गति से चलते रहते हैं।

तब लोगों ने सोचा कि हो न हो आकाश के पीछे कोई बहुत जटिल यंत्र छिपा हुआ है। शायद, यह यंत्र घड़ी जैसा है। वहां पहाड़ जितने बड़े दांतेदार चक्के घूमते होंगे और वे पृथ्वी के ऊपर तारों भरे इस आकाश को घुमाते होंगे। आकाश भी तो बहुत भारी होगा – इतना बड़ा जो है!

कितना अच्छा हो अगर पृथ्वी के छोर तक पहुंचकर आकाश में छेद कर लिया जाये और देखा जाये उसके पार क्या है! कितना रोचक होगा वहां सब कुछ!

हंसो नहीं। कभी लोगों को सचमुच आकाश के उस पार के इन विराट "चक्कों" में विश्वास था।

खैर, जो भी हो, लोग इस बात के आदी हो गये कि आकाश पर सदा अटल व्यवस्था रहती है, कि खगोलीय पिंडों का भरोसा किया जा सकता है, वे कभी दगा नहीं देंगे। इससे लोगों को दूर-दूर की यात्राएं करने में मदद मिलती थी।

उदाहरण के लिए रोज़ाना डूबते सूरज की दिशा में बढ़ते हुए पथिक जानते थे कि वे एक ही दिशा में जा रहे हैं और बेशक, कभी भटकते नहीं थे।

यह मत भूलो कि तब न कुतुबनुमा (कम्पास) था, न मानचित्र, न प्रकाश-स्तम्भ।

तो इस तरह तारों को देख-देखकर यात्रा करते हुए लोगों का ध्यान एक विचित्र बात की ओर गया।

ऐसा होता कि लोग अपने गांव से ऊंटों पर सवार होकर लंबी यात्रा पर निकले और उन्होंने किसी चमकते तारे को अपना पथ-प्रदर्शक मान लिया।

अब वे चलते जाते हैं, चलते जाते हैं – एक दिन, दो दिन, हफ़्ता भर और देखते क्या हैं कि हर अगली रात को वह तारा क्षितिज से अधिक ऊपर दिखायी देता है। जैसे कि पथिक सपाट मैदान पर नहीं चल रहे बल्कि विशाल ढलवां टीले पर चढ़ रहे हैं और उन्हें टीले के पार अधिक ही अधिक दूर का दृश्य दिखायी दे रहा है। जब वे घर लौटते हैं तो तारा हर रात को पहले से नीचे नज़र आता है, मानो वे उससे दूर टीले के पीछे जा रहे हैं।

सो, लोगों ने सोचा – इस सबका मतलब है कि पृथ्वी उभारदार है, औंधे रखे किसी विशाल कड़ाहे की भांति।

मज़े की बात तो यह है कि समुद्र में जल भी उभारदार निकला। नौयात्रियों ने ही नहीं, बल्कि सागर तट पर रहनेवाले लोगों ने भी यह बात देखी। वे समुद्र





में जाते जहाज़ को देखते, पहले तो सारा का सारा जहाज़ नज़र आता, फिर उसके केवल पाल ही और फिर मस्तूलों के ऊपरी सिरे ही और अंततः पूरा जहाज़ ओझल हो जाता। जैसे कि उसने कोई पहाड़ पार किया हो और उस पार की ढलान पर उतर गया हो।

तुम स्वयं भी समुद्र या झील के तट पर यह बात देख सकते हो। हां, पानी में ऊंची लहरें नहीं उठ रही होनी चाहिए और पानी के पास झुककर जहाज़ को देखना चाहिए।

जहाज़ जब पांचेक किलोमीटर दूर चला जायेगा तो उसका निचला हिस्सा पानी के पीछे छिपने लगेगा। दसियों किलोमीटर दूर निकल जाने पर ही जहाज़ पूरी तरह ओझल होगा। इसलिए दूरबीन से देखने पर ही तुम्हें यह सब अच्छी तरह नज़र आयेगा।

प्राचीन युग में लोगों के लिए इस विचार का आदी होना बहुत कठिन था कि समुद्र उभारदार है। वे तो सदा से यही देखते आये थे कि पानी जब भी बिखरता है तो एकसमान, सपाट फैलता है।

लेकिन इस बात पर उन्हें विश्वास करना ही पड़ा। सो अब लोग यह मानने लगे कि पृथ्वी सपाट थाल नहीं, बल्कि गोलार्ध है, जिस पर पता नहीं कैसे समुद्र "पोत" दिये गये हैं।

परंतु गोलार्ध के भी सिरे होने चाहिए। लोगों ने समुद्रों की यात्राएं कीं, दूर-दूर के देशों को गये, लेकिन "पृथ्वी के छोर" की कोई कहीं दूर से भी झलक तक न पा सका।

एक और बात थी जिस पर लोगों को बहुत दिमाग लड़ाना पड़ रहा था। सूर्य, चंद्रमा और तारे तो रोज़ाना कहीं डूब जाते हैं, पृथ्वी के छोर के पीछे डुबकी लगाते हैं और अगले दिन दूसरी ओर से निकल आते हैं। तो भी ऐसा कभी नहीं हुआ कि वे उन स्तम्भों में फंस गये हों, जिन पर पृथ्वी टिकी हुई है। तारे भी सदा सभी अपने स्थान पर होते हैं। सूर्य और चंद्रमा को भी कभी पूरब में उगने में देरी नहीं होती।

लगता है कि पृथ्वी के तले, जहां से खगोलीय पिंड गुज़रते हैं, कुछ नहीं है।

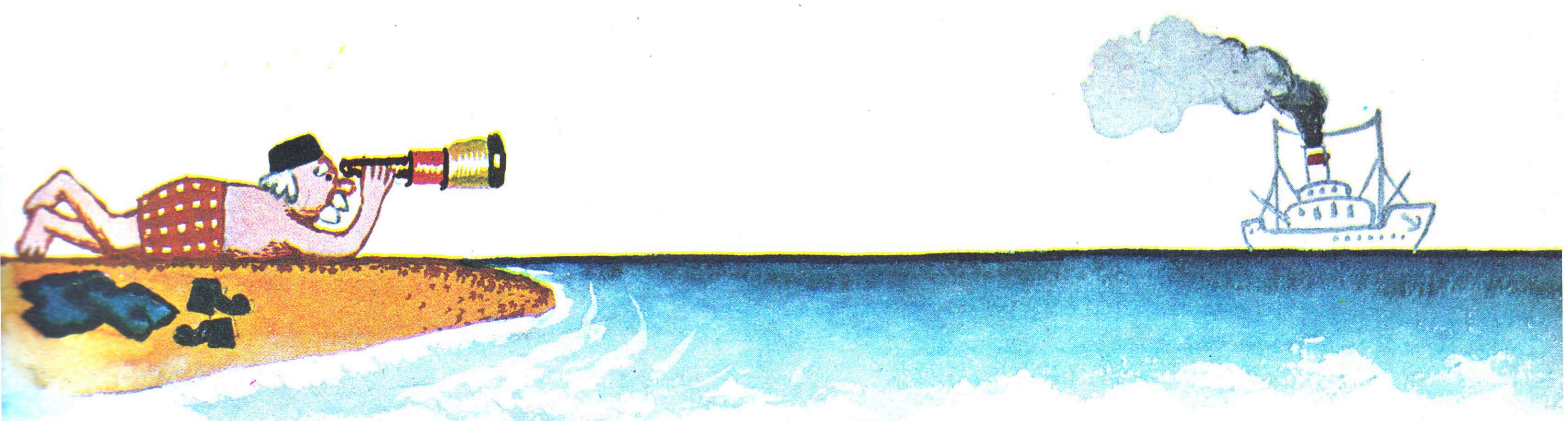
अब लोगों ने सोचा: यह भी तो हो सकता है कि कोई स्तम्भ-वस्तम्भ हो ही न? और पृथ्वी गोलार्ध नहीं गोला है? यह गोला किसी पर भी टिका नहीं हुआ है, बल्कि किसी जादूई बल से लटका हुआ है?

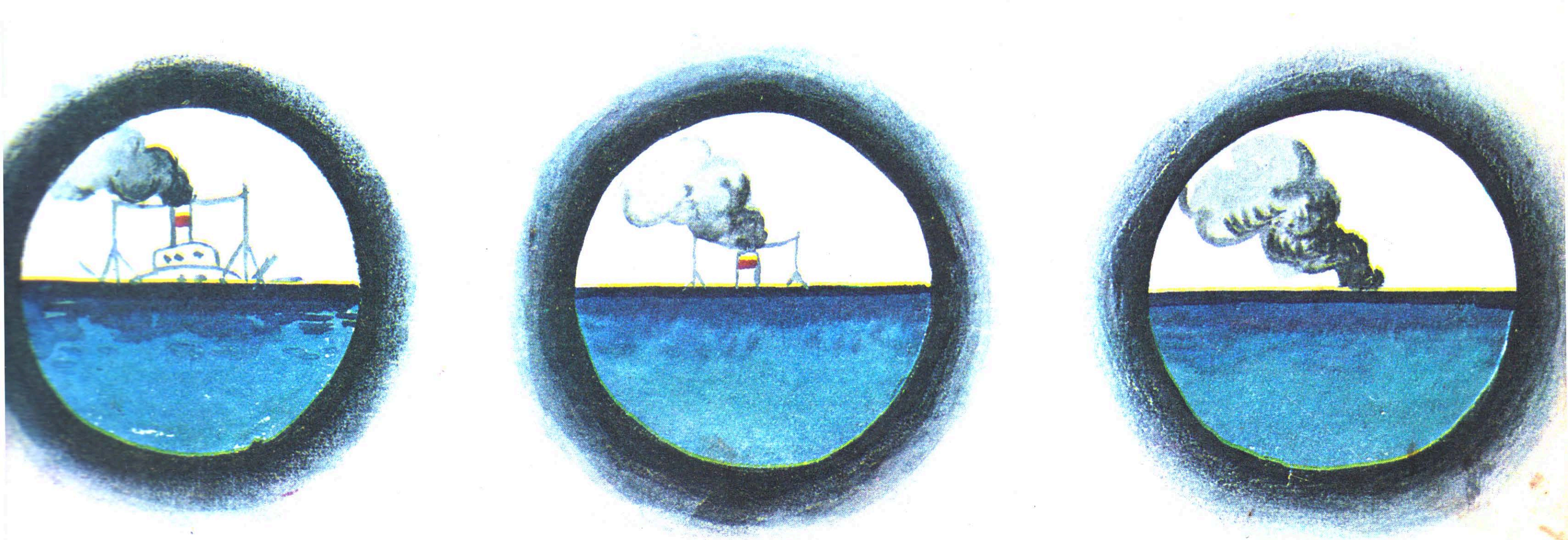
अगर ऐसा मान लिया जाये, तो सभी पहेलियां आसानी से बूझी जा सकती हैं – पृथ्वी का छोर क्यों नहीं है और सूर्य क्यों कहीं फंसे बिना रात को पृथ्वी के नीचे से गुज़र जाता है।

बस एक ही बात समझ में नहीं आती थी – पृथ्वी के दूसरी ओर लोग कैसे चलते हैं? वहां तो उनका सिर नीचे और पैर ऊपर होते होंगे!

सैकड़ों साल बीतने पर ही लोग ऐसे बड़े-बड़े जहाज़ बनाना सीख पाये, जिन पर महासागर पार किये जा सकते थे। अब लोगों ने सारी पृथ्वी का चक्कर लगाया तो उन्हें पूरी तरह यकीन हो गया कि पृथ्वी एक गोला है। और वे यह भी समझ गये कि पृथ्वी पर कोई भी सिर नीचे पांव ऊपर करके नहीं चलता है। क्योंकि पृथ्वी ही सदा नीचे होती है।

अब तो हम सब बचपन से ही जानते हैं कि पृथ्वी एक गोला है। हर स्कूल में अब ग्लोब है। लेकिन ज़रा सोचो कि पहले लोगों के लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना कितना कठिन था!







तारे इतने सुंदर क्यों हैं?

चलो, किसी शाम को जब मौसम साफ़ हो और अंधेरा घिर आये तो दूर मैदान में या समुद्र के तट पर, किसी ऐसी खुली जगह पर चलें, जहां आकाश न मकानों से, न पेड़ों से छिपा हो, ऐसी जगह जहां आस-पास सड़कों की रोशनियां न जलती हों और मकानों में बत्तियां। चारों ओर बसा घना अंधेरा हो।

अब आकाश को देखो! कितने तारे हैं वहां! सभी ऐसे नुकीले-नुकीले लगते हैं, जैसे कि अंधेरे गुम्बद में सूई से महीन-महीन छेद कर दिये गये हों और उनके पीछे नीली रोशनी हो।

देखो, कैसे अलग-अलग हैं तारे। इनमें बड़े भी हैं और छोटे भी, नीले भी और पीले भी, कुछ तारे अकेले हैं और कुछ एक दूसरे से सटे-सटे हैं, झुंडों में जमा हैं।

इन "झुंडों" को, तारा-पुंजों को ही नक्षत्र कहते हैं।

जैसे आज हम तारों भरे आकाश को देख रहे हैं, वैसे ही हज़ारों साल पहले लोग उसे देखा करते थे।

आकाश तब लोगों के लिए कम्पास, घड़ी, कैलेंडर सभी कुछ था। तारों की मदद से ही पथिक अपना पथ ढूंढते थे। तारों को देखकर ही लोग यह पता लगाते थे कि सुबह होने में कितनी देर है, और तारों से ही वे यह पूछते थे कि वसंत कब आयेगा।

आकाश की लोगों को सदा ही और हर बात में आवश्यकता थी। लोग देर तक मंत्रमुग्ध-से उसे देखते रहते थे, निहारते और चकित होते रहते थे और उनके मस्तिष्क में भांति-भांति के विचार जन्म लेते रहते थे।

तारे क्या हैं? वे आकाश पर कैसे प्रकट हुए? वे आकाश पर इस तरह ही क्यों छिटके हुए हैं, किसी और तरह क्यों नहीं? ये नक्षत्र क्या हैं?

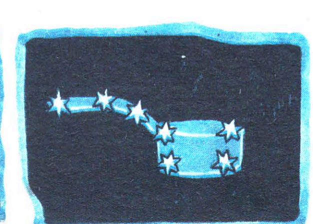
रात को शांति होती है: हवा धीमी पड़ जाती है, पेड़ों की पत्तियां नहीं खड़खड़ाती हैं, सागर शांत हो जाता है। पशु-पक्षी सो जाते हैं। लोग सो जाते हैं। और इस खामोशी में तारों को देखते हुए मन में अपने आप ही भांति-भांति की कथाएं जन्म लेती हैं – एक से एक सुंदर।

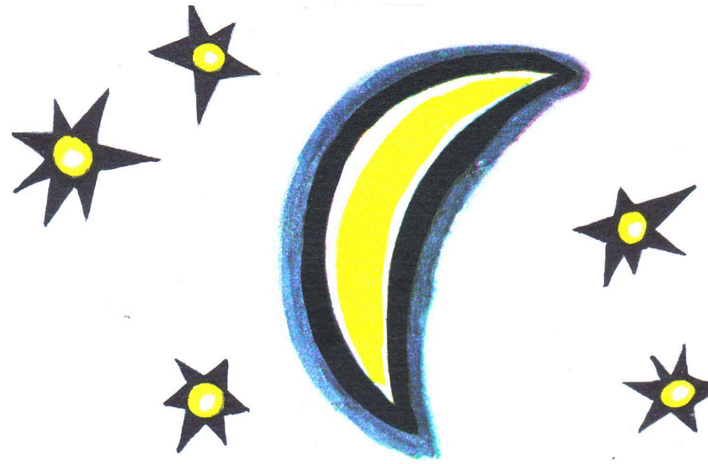
प्राचीन युग में लोगों ने तारों के बारे में बहुत सी कथाएं सोचीं।

वहां सात चमकते तारे देख रहे हो न? हमने उनका









चित्र बनाया है। लगता है जैसे आकाश पर बिंदुओं से पतीला बना हो, लंबी मूठवाला पतीला।

चीन में पुराने ज़माने में इस नक्षत्र को "पे-तेऊ" कहा जाता था जिसका अर्थ है पतीला। भारत में इसका नाम सप्तर्षि रखा गया। मध्य एशिया में जहां घोड़े बहुत थे इस नक्षत्र के बारे में कहा जाता था: "खूंटे से बंधा घोड़ा"। यूरोप में इस नक्षत्र का नाम ऋक्षिका (रीछनी) पड़ा।

प्राचीन यूनान में इस नक्षत्र के बारे में यह कहानी गढ़ी गयी।

एक ज़माने में अरकादिया नामक देश का राजा था लाओकून। उसके एक बेटी थी कलिस्तो। संसार भर में उसकी जैसी रूपवती युवती और कोई नहीं थी। रूप की देवी हेरा का सौंदर्य भी उसके सामने फीका पड़ गया। इस पर हेरा आग-बबूला हो उठी। उसने रूपवती कलिस्तो को कुरूप रीछनी बनाने की ठानी। हेरा का पति देवराज ज़ेउस निरीह युवती को इस शाप से बचाना चाहता था, लेकिन उसके पहुंचने तक देर हो चुकी थी। कलिस्तो वहां नहीं थी, उसके स्थान पर झबरीला, कुरूप जानवर सिर झुकाये घूम रहा था।

ज़ेउस को सुंदरी पर तरस आया। रीछनी की पूंछ पकड़कर वह उसे स्वर्गलोक को खींच ले चला।

बड़ी देर तक वह पूरा ज़ोर लगाकर उसे खींचता रहा। इसीलिए रीछनी की पूंछ इतनी लंबी हो गयी।

आकाश पर ले जाकर ज़ेउस ने लंबी पूंछवाली कुरूप रीछनी को चमकीला नक्षत्र बना दिया। तब से लोग रोज़ रात को इस नक्षत्र को निहारते हैं और रूपवती कलिस्तो को याद करते हैं।

ऋक्षिका से थोड़ी ही दूर ध्रुव तारा चमकता है। उसे ढूंढना कठिन नहीं है। ऋक्षिका के दो सिरों के तारों से होकर खींची गयी एक रेखा की कल्पना करो, जैसे कि हमने यहां चित्र में खींची है। अब इस रेखा पर ऋक्षिका के तारों के बीच की दूरी जितने बड़े पांच कदम नापो और तुम ध्रुव तारे पर पहुंच जाओगे। वह इतना चमकीला





तो नहीं है। लेकिन इसे जानना चाहिए। यह उत्तर दिशा इंगित करता है।

आकाश के दूसरी ओर छोटे-छोटे तारों का पुंज है। इन तारों को प्लायोडिज़ कहते हैं। सहमे-सहमे मासूम चूज़ों की तरह ये एक दूसरे से सटे हुए हैं। कुल छह तारे हैं ये।

प्लायोडिज़, ध्रुव तारे और ऋक्षिका के बारे में पुराने ज़माने में लोगों ने यह कहानी बनायी थी।

एक ज़माने में सात दस्यु-भाई रहते थे। उन्होंने सुना कि बहुत दूर, पृथ्वी के छोर पर सात बहनें रहती हैं, सुंदर और सुशील बहनें। भाइयों ने उन्हें अपनी पत्नियां बनाने की ठानी। घोड़ों पर सवार होकर वे दौड़ चले और आखिर पृथ्वी के छोर पर पहुंच गये। वहां वे छिपकर बैठ गये। शाम को जब सात बहनें घूमने निकलीं तो वे उनकी ओर लपके। एक को तो उन्होंने पकड़ लिया, लेकिन बाकी बहनें तितर-बितर हो गयीं।

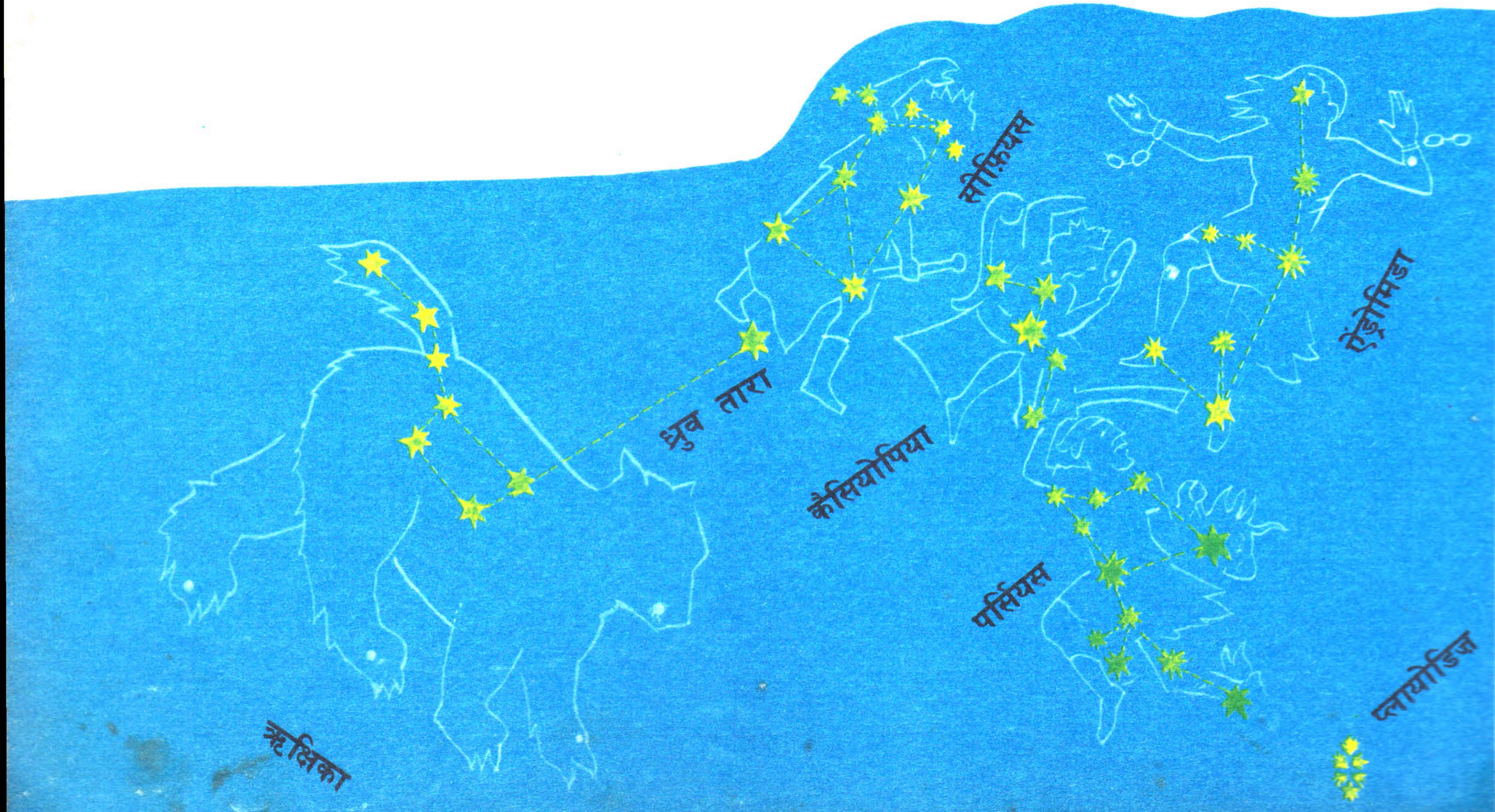
दस्यु-भाई इस युवती को हर ले गये, लेकिन इसका उन्हें कठोर दंड मिला। देवताओं ने उन्हें तारे बना दिया – वही, जिन्हें हम ऋक्षिका नक्षत्र कहते हैं और उन्हें ध्रुव तारे का प्रहरी बना दिया।

जब रात अंधेरी हो और आसमान साफ़, तो ऋक्षिका की पूंछ के बिचले तारे के पास एक बिल्कुल छोटा-सा तारा नज़र आता है। यह हर ली गयी युवती है।

प्लायोडिज़ शेष छह बहनें हैं। सहमी-सहमी-सी वे एक दूसरी से सटी रहती हैं और रोज़ रात को डरती-डरती आकाश पर चढ़ती हैं, अपनी बहन को ढूंढती हैं।

आकाश के दूसरी ओर कुछ तारे अर्धवृत्त में बिखरे हुए हैं, जैसे कि आधा मुकुट जगमगा रहा हो। यह उत्तरी किरीट नक्षत्र है।

प्राचीन यूनान में कहा जाता था कि कभी क्रीट द्वीप पर अरियाद्ना नाम की साहसी, सुंदर राजकुमारी रहती थी। उसे पराक्रमी सेनानी थीसियस से प्रेम हो गया और वह पिता के क्रोध की परवाह किये बिना उसके साथ चली गयी। लेकिन रास्ते में थीसियस ने एक सपना देखा। उसे यह सपना आया कि देवता उसे अरियाद्ना को त्याग देने का आदेश दे रहे हैं। थीसियस देवताओं



के आदेश की अवहेलना करने का साहस न कर पाया। विलाप करती अरियाद्ना को सागर तट पर छोड़कर वह उदास मन से आगे चल दिया।

बैकस देवता ने अरियाद्ना का विलाप सुना और उससे विवाह करके उसे देवी बना लिया। अरियाद्ना के रूप को शाश्वत बनाने के लिए उसने उसके सिर से फूलों का मुकुट उतारकर उसे आकाश पर फेंक दिया।

मुकुट के फूल उड़ते-उड़ते रत्न बन गये और आकाश पर पहुंचकर तारों की भांति चमकने लगे।

तारों का यह मुकुट (किरीट) देखकर लोग रूपवती अरियाद्ना को याद करते हैं।

इधर एक और नक्षत्र है। पुस्तक में बना चित्र देखो – पांच तारे "M" अक्षर जैसे हैं, जिसकी "टांगें" अलग-अलग दिशाओं में फैल गयी हैं। प्राचीन लोगों को यह नक्षत्र कुर्सी पर लेटी युवती की याद दिलाता था। इस नक्षत्र का नाम है कैसियोपिया। कैसियोपिया नक्षत्र के इर्द-गिर्द तीन और नक्षत्र हैं: सीफ़ियस, ऐंड्रोमिडा और पर्सियस।

इन चार नक्षत्रों की बड़ी लंबी कहानी प्राचीन यूनान में गढ़ी गयी थी।

बहुत पहले इथियोपिया देश का राजा था सीफ़ियस। उसकी पत्नी कैसियोपिया को अपने रूप पर बहुत गर्व था। एक बार वह जल-परियों नीरियस-पुत्रियों के सामने अपने सौंदर्य की प्रशंसा करने लगी। नीरियस-पुत्रियों को यह बहुत बुरा लगा, उन्होंने जल देवता पोसिडोन से शिकायत की। क्रुद्ध पोसिडोन ने विराट, डरावनी ह्वेल इथियोपिया की ओर भेजी।

अब सीफ़ियस को चिंता हुई कि ह्वेल को शांत कैसे किया जाये ताकि वह उसके देश को सताये नहीं।

मनीषियों ने सीफ़ियस को परामर्श दिया कि वह देश की सबसे सुंदर युवती, अपनी चहेती बेटी ऐंड्रोमिडा को ह्वेल को भेंट कर दे।

सीफ़ियस रो पड़ा। लेकिन क्या करता? किसी भी कीमत पर उसे भयानक ह्वेल से देश की रक्षा करनी थी। सो उसने बेटी का बलिदान करने का निश्चय किया।

ऐंड्रोमिडा को सागर तट पर लाकर जंजीरों से चट्टान से बांध दिया गया। ह्वेल आयेगी, उसे ले जायेगी।

उधर इथियोपिया से दूर वीर योद्धा पर्सियस एक अद्वितीय पराक्रम करने निकला था। वह चुपके-चुपके एक वीरान द्वीप पर पहुंचा, जहां गोर्गनें रहती थीं। ये ऐसी राक्षसियां थीं, जिनके सिरों पर बालों की जगह काले सांप थे। जिसकी भी नज़र इनसे मिल जाती वह







भय से जकड़ा जाता और वहीं का वहीं पत्थर बन जाता।

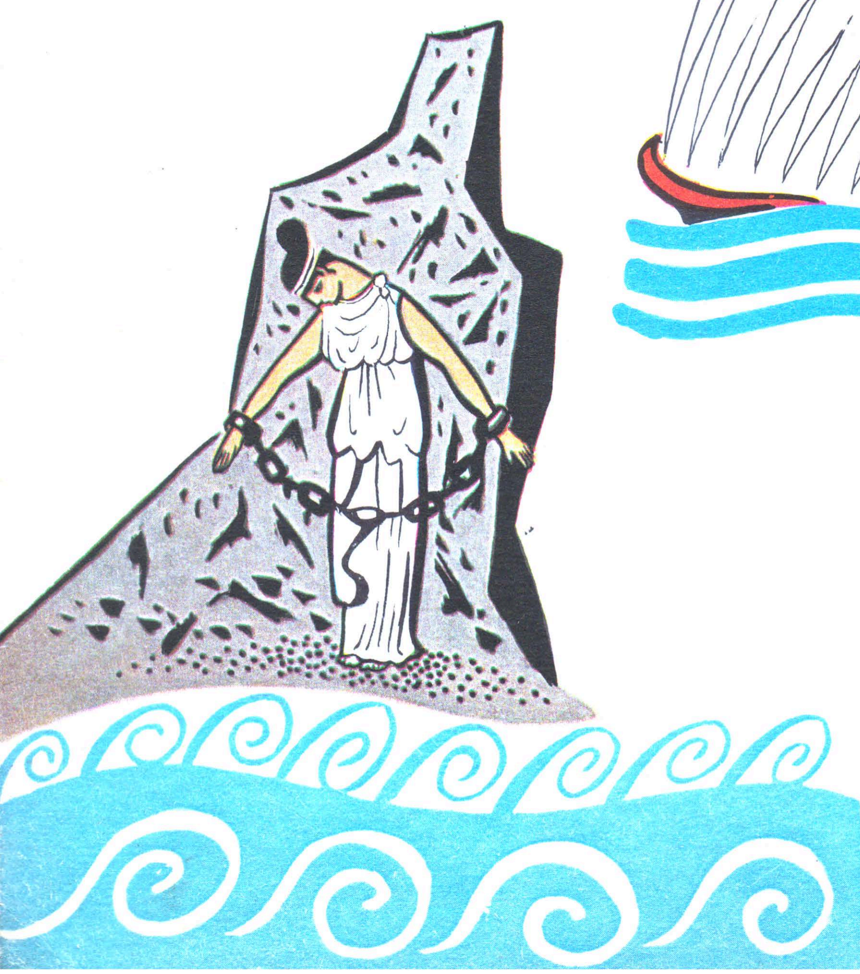
पर्सियस इन गोर्गनों के पास उस समय पहुंचा जब वे सो रही थीं। उसने मेडूसा नाम की सबसे बड़ी गोर्गन राक्षसी का सिर काट लिया।

मेडूसा का भयावह सिर अपने झोले में छिपाकर वह उड़न-चप्पलों पर अपने देश को लौट चला।

इथियोपिया के ऊपर से गुज़रते हुए पर्सियस ने चट्टान से बंधी, आंसू बहाती सुंदरी ऐंड्रोमिडा को देखा।

उधर भयानक ह्वेल भी तट के पास पहुंच रही थी – ऐंड्रोमिडा की बलि लेने।





पर्सियस चील की भांति ह्वेल पर झपटा। बड़ी देर तक वह ह्वेल से जूझता रहा, अंत में उसने मेडूसा का भयानक सिर ह्वेल को दिखा दिया और वह शक्तिशाली विराट जीव डर के मारे बुत बन गया।

ह्वेल इथियोपिया के तट के पास एक टापू बन गयी। पर्सियस रूपसी ऐंड्रोमिडा की ज़ंजीरें खोलकर उसे उसके पिता के पास ले गया।

राजा सीफ़ियस की खुशी का ठिकाना न रहा और

उसने वीर पर्सियस से अपनी पुत्री ऐंड्रोमिडा का विवाह कर दिया।

आकाश में अनेक नक्षत्र हैं और उनके बारे में कहानियां भी अनेक हैं। उधर तारों से एक पक्षी बना हुआ है। यह हंस नक्षत्र है। कहा जाता था कि देवराज ज़ेउस ही हंस बनकर पृथ्वी पर आ रहे हैं।

उधर एक और सुंदर नक्षत्र है ओरियन। इसका भारतीय नाम है मृग। यूनानी कथाओं के अनुसार ओरियन

हंस



निडर आखेटक है। वह गदा उठाकर किसी विराट पशु को मारने जा रहा है।

आकाश के दूसरी ओर वृश्चिक (बिच्छू) नक्षत्र छिपा हुआ है। इन तारों को देखकर लगता है कि इस दुष्ट कीट के अंग अंधेरे में झिलमिला रहे हैं।

तारों भरा आकाश कथा-कहानियों की पूरी पुस्तक ही है। सभी तो हम सुना नहीं सकते।

अच्छा, कहानियां तो कहानियां ही हैं। हमें यह भी तो पता चलाना चाहिए कि तारे हैं क्या।

लोगों ने सदियों, सहस्राब्दियों तक इस पर बहुत सोचा-विचारा।

कुछ लोगों का कहना था कि तारे छत में छोटे-छोटे छेद हैं, जिनसे प्रकाश छनकर आता है।

कुछ लोग यह मानते थे कि तारे आकाश में ठुकी सोने-चांदी की कीलों की टोपियां हैं।

सभी लोग इस बात पर एकमत थे कि आकाश ठोस छत है, ठोस गुम्बद है। क्योंकि तारे कभी अपनी जगह से नहीं हटते। दिन, महीने, वर्ष बीतते हैं, लेकिन



वृश्चिक

तारों का हर पुंज, हर नक्षत्र ज़रा भी नहीं बदलता। सो, लोगों को यह लगता था कि वे कहीं लगे हुए हैं, जैसे दीवार पर कीलें।

अगर तारे रोयों की तरह हवा में "उड़ते" होते, तो वे अपनी जगह पर कतई न बने रह पाते। तब नक्षत्र भी अपना रूप बदलते रहते। चूंकि नक्षत्र एक ही जगह "ठुके" रहते हैं, इसका मतलब है आकाश ठोस है। अब यदि आकाश ठोस है तो उड़कर उस तक पहुंचा जा सकता है, उसे हाथ से छुआ जा सकता है।

लेकिन लोगों को उड़ना तो आता नहीं था, इसलिए बहुत समय तक वे यह नहीं पता लगा सके कि यह छत कितनी ऊंचाई पर है और कैसी है। पत्थर जैसी मज़बूत और मोटी है? बिल्लौरी कांच जैसी नाजुक-पतली है? दिन में वह नीली और रात को काली क्यों होती है?

मृग





क्या आकाश को बेधा जा सकता है?

आओ, हम नीले आकाश को बेधने की कोशिश करें। राकेट में बैठकर हम सीधे ऊपर उड़ चलते हैं।

राकेट का शोर बढ़ता जाता है, फिर कर्णभेदी गरज होती है, राकेट हिलता है और ऊपर को बढ़ने लगता है।

खिड़की के बाहर पृथ्वी कहीं नीचे छूटती जाती है।

दीवार पर लगे यंत्र की सूई ऊंचाई दिखाती है।

... १ किलोमीटर ... १.५ किलोमीटर ... २ किलोमीटर।

लगता है कि अभी हम बादलों से जा टकरायेंगे। डर गये न? लेकिन कोई टक्कर नहीं होती। बादल धुएं जैसे हैं।

यंत्र ऊंचाई दिखा रहा है – ३ किलोमीटर।

हमारे चारों ओर बादल हैं। कितने सुंदर हैं वे। वे अंडों की फेंटी हुई सफ़ेदी के विशाल पहाड़ों या रूई के ढेरों जैसे ही लगते हैं।

बादलों के बीच पृथ्वी पर मकान और पेड़ नज़र आते हैं। इतनी ऊंचाई से वे खिलौने जैसे लगते हैं।

हम ऊपर बढ़ते जा रहे हैं। अब ऊंचाई १० किलोमीटर है। बादल दूर हमारे नीचे छूट गये हैं। अब वे हिम के ढेरों जैसे लगते हैं। बादलों के बीच पृथ्वी नज़र तो आती है, लेकिन साफ़ नहीं, धुंधली-सी। मकान और पेड़ अब पहचाने नहीं जाते। बस मटमैले धब्बे-धब्बे दिखायी देते हैं। ये जंगल, खेत, झीलें, नगर हैं।

हमारे ऊपर आकाश अब एकदम साफ़ हो गया है। अब वह आसमानी नहीं रहा, बल्कि गाढ़े नीले रंग का है।

अब तो जल्दी ही "छत" भी आ जायेगी। शायद हमें राकेट की गति धीमी कर देनी चाहिए, वरना इतनी तेज़ी से टकरायेंगे कि बस धज्जियां ही उड़ जायेंगी।

लेकिन राकेट तो और भी अधिक तेज़ी से उड़ रहा है। डर ही लगता है!

आओ, खिड़की से बाहर झांकें। शायद "छत" अब बिल्कुल पास ही होगी।

अरे, देखो तो! यह क्या हो रहा है? गहरा नीला आकाश हमारे पास नहीं आ रहा, बल्कि अजीब ढंग से विलुप्त होता जा रहा है। नीले के बजाय अब वह गहरे बैंगनी रंग का हो गया है। उसका रंग निरंतर अधिक गाढ़ा होता जा रहा है। ऊंचाई ४० किलोमीटर!

आकाश ऐसा हो गया है, जैसा रात को होता है, एकदम काला।

तारे भी नज़र आ रहे हैं। दिन चढ़ा हुआ है। सूरज चमक रहा है और उसके पास ही तारे हैं।

यह क्या हुआ? नीला आकाश कहां गया?

ऊपर तो वह नहीं है। दायें-बायें भी नहीं है। हो

सकता है वह नीचे रह गया हो? आओ नीचे देखें। पृथ्वी अपने स्थान पर है। उस पर बादल फैले हुए हैं, जैसे कि फ़र्श पर रूई के छोटे-छोटे टुकड़े। लेकिन इस सब पर पृथ्वी और बादलों पर आसमानी रंग का घना कुहासा-सा छाया हुआ है।

अच्छा तो, नीला आकाश वहां है। वह हमारे से नीचे रह गया! जब हम ऊपर उठ रहे थे तो हमें पता भी नहीं चला कब हमने उसे बेध दिया, उसे पार कर गये और अब "नीले आकाश से ऊपर" हैं!

इसका मतलब यह हुआ कि नीला आकाश पृथ्वी के बिल्कुल पास ही है, जैसे कि सुबह के समय दलदल पर छाया कोहरा। और यह नीला आकाश कोई इतना मोटा भी नहीं है—यही कोई तीस किलोमीटर, बस। इसे बेधना भी कोई मुश्किल काम नहीं है। हां, कोई छेद नहीं बचा रहता। धुएं या कोहरे में कैसा छेद हो सकता है?

सो, अब हमें पता चल गया कि आकाश दो हैं, बिल्कुल भिन्न-भिन्न। एक आसमानी रंग का है, हमारे पास ही है और दूसरा उससे आगे है—काले रंग का।

देखा? हम सोच रहे थे कि एक ही "छत" है जो दिन और रात को रंग बदलती रहती है।

अब तो हमें यह पता चल गया है कि काली "छत" दिन को भी काली होती है। और वह रात-दिन सदा अपने स्थान पर रहती है। और तारे भी उस पर सदा चमकते रहते हैं। बस दिन में यह नीले आकाश के पीछे छिपा रहता है।

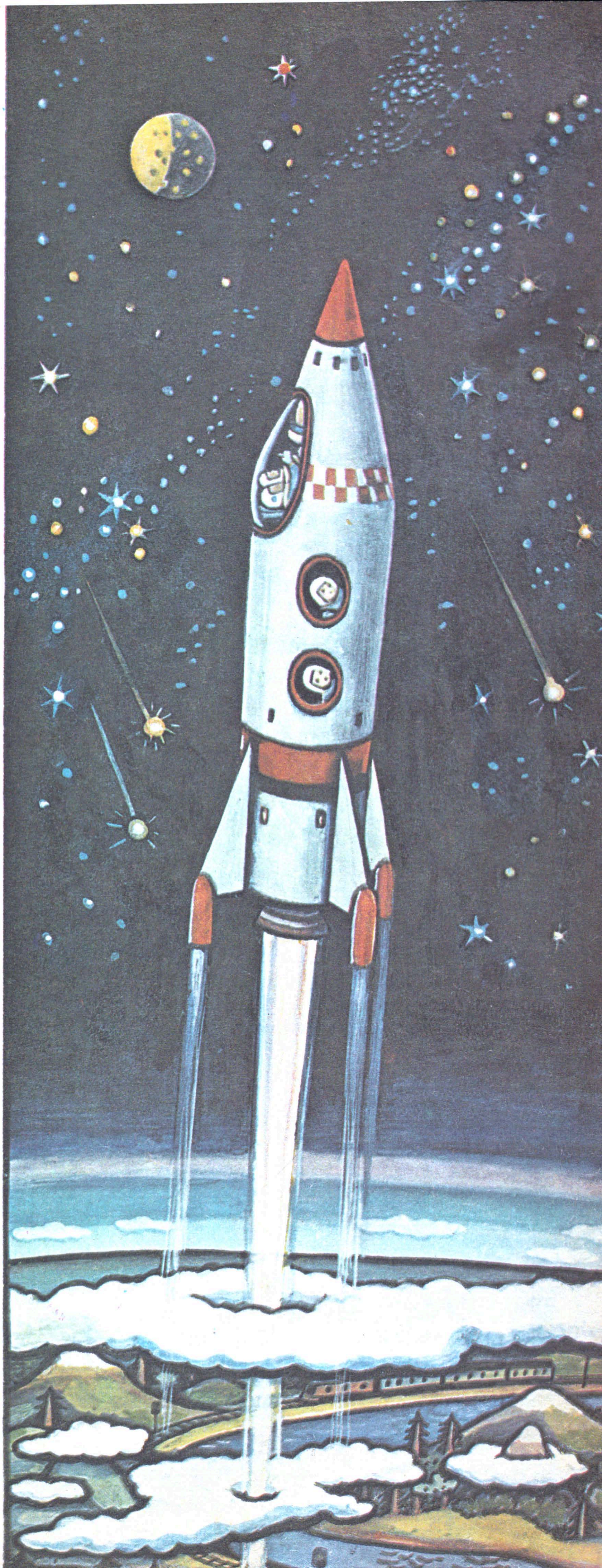
लेकिन नीला आकाश रात को कहां गुम हो जाता है?

कहीं गुम नहीं होता। वह तो बस पारदर्शी हो जाता है, अदृश्य हो जाता है।

नीला आकाश तो हवा ही है। वही हवा जिससे हम-तुम सांस लेते हैं, पक्षी और विमान उड़ते समय पंखों से जिस पर टिके होते हैं।

हवा पारदर्शी है, किंतु पूरी तरह नहीं। उसमें सदा काफ़ी धूल होती है। जब अंधेरा होता है तो यह धूल दिखायी नहीं देती। रात को हमें यह नज़र नहीं आती, सो हमें लगता है कि हमारे ऊपर हवा है ही नहीं। दिन में हवा पर सूरज का प्रकाश पड़ता है। हवा में उड़ता धूल का हर कण छोटी-सी चिंगारी की तरह चमकने लगता है। हवा धुंधली हो जाती है।

ज़रा यह याद करो कि अंधेरे कमरे में आती सूरज की किरण में हवा कितनी धुंधली लगती है।



हवा



अच्छा तो अब हमारे ऊपर जो तारों भरा काला आकाश है वह क्या है? क्या वह बहुत दूर है?

हम पृथ्वी से दूर उड़ते जाते हैं। बहुत देर तक हमारा राकेट उड़ता जाता है। अब ऊंचाई १० हज़ार किलोमीटर है। तारे हमारे ज़रा भी पास नहीं आये, लेकिन पृथ्वी को यहां से अच्छी तरह देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी का सारा गोला पतली मलमलनुमा आसमानी परत में लिपटा हुआ है।

हम अब जानते हैं कि यह क्या है। यह धुंधली हवा है।

जो लोग इस परत के अंदर, पृथ्वी पर बैठे हैं उनके लिए यह नीला आकाश है। वहां इस "छत" तले उन्हें अब तारे नहीं दीख रहे हैं, लेकिन हम उन्हें देख रहे हैं।

हवा की परत धीरे-धीरे पतली होती-होती विलुप्त हो जाती है। पृथ्वी से ३ हज़ार किलोमीटर की दूरी पर भी हवा है, लेकिन अत्यंत विरल।

उससे आगे?

आगे हवा बिल्कुल नहीं है। वहां निर्वात है।

निर्वात क्या है? निर्वात हवा से किस बात में भिन्न है?

तहुत अंतर है दोनों में।

निर्वात



हवा में हम सांस ले सकते हैं। निर्वात में सांस लेने के लिए कुछ नहीं है। निर्वात में तो हमें विशेष अंतरिक्ष-पोशाक पहननी होगी, जिसमें एक भी छेद, एक भी दरार न हो। पीठ पर लटकते सिलंडरों से इस पोशाक में हवा भरी जायेगी।

हवा ठंडी हो सकती है या गरम। इसलिए हवा में हमें कभी ठंड लगती है तो कभी गरमी। निर्वात में सदा एक सी ठंड होती है। वहां अच्छी तरह गरम कपड़े पहनने होंगे। निर्वात में वैसा ही लगता है, जैसे कड़ाके की सर्दी में अलाव के सामने। एक ओर से सूरज का ताप है और दूसरी ओर से काले ताराच्छादित आकाश से ठंड आती है।

ऐसे मौसम में जब हवा न चल रही हो यदि तुम चिड़िया का पर आगे को फेंको तो वह उड़ेगा नहीं, पास ही गिर पड़ेगा। वायु उसे उड़ने नहीं देती। निर्वात में उसके लिए कोई बाधा नहीं होगी। वहां यह पर दूर तक उड़ता जायेगा, जैसे कि वह भारी हो, लोहे का हो।

हवा में पक्षी उड़ते हैं। निर्वात में उन्हें ज़मीन पर चलना पड़े। पंख वहां किसी काम के नहीं हैं। क्योंकि पक्षी जब उड़ते हैं तो पंख हवा पर टिके रहते हैं, निर्वात में वे किसी चीज़ पर नहीं टिके रहेंगे। निर्वात में हवाई जहाज़ भी नहीं उड़ सकते।

हवा से "लिपटे" पृथ्वी के गोले के चारों ओर जो निर्वात है उसे अंतरिक्षीय दिक् कहते हैं। सरलता के लिए इसे केवल अंतरिक्ष भी कह देते हैं।

तो अब यह देखो कि इस निर्वात में हम किसी भी दिशा में कितनी भी दूर जाते जायें – महीने, साल, हज़ारों साल तक राकेट पर उड़ते जायें तो भी हम इस निर्वात के अंत तक, अंतरिक्ष के अंत तक, "काली छत" तक नहीं पहुंचेंगे।

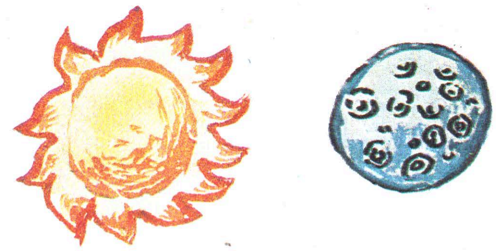
अंतरिक्ष में पृथ्वी वैसे ही है, जैसे कि निस्सीम महासागर के विस्तार में खोया एक द्वीप।

अंतरिक्ष में दूसरे "द्वीप" भी हैं। वे पृथ्वी से नज़र आते हैं। यह हैं चंद्रमा, सूरज, तारे। हम उन तक पहुंच सकते हैं, लेकिन उनसे आगे फिर वही काला निर्वात होगा।

इस निर्वात का कोई अंत नहीं है। कोई "काली छत" है ही नहीं – न पत्थर की, न बिल्लौरी कांच की।

इसलिए हम केवल नीले आकाश को ही "बेध" सकते हैं। ऐसा कर पाना कतई कठिन नहीं है। यह नीला आकाश हमारे बिल्कुल पास ही है और वह धुएं जैसा, कोहरे जैसा "नरम" है।





सूर्य और चंद्रमा किस चीज़ से बने हैं?

अभी कुछ साल पहले ही लोग अंतरिक्ष उड़ानें भरने लगे हैं। १९६१ में यूरी गगारिन ने सबसे पहले अंतरिक्ष उड़ान भरी। तब से अब तक विभिन्न देशों के कुल एक सौ से कुछ अधिक अंतरिक्षनाविकों ने उड़ानें भरी हैं।

लेकिन मनुष्य को ऐसी खतरनाक यात्रा पर भेजने से पहले अंतरिक्ष के बारे में कुछ जानकारी पा लेना ज़रूरी था।

तो पृथ्वी पर बैठे-बैठे लोगों ने कैसे यह पता लगाया कि रात का काला आकाश क्या है, चंद्रमा क्या है, सूरज क्या है, तारे क्या हैं? ऐसे तो तुम चाहे सारी-सारी रात बैठे आकाश को देखते रहो, वह छत ही लगता है, सूर्य और चंद्रमा उजली "चपातियां" लगते हैं और तारे केवल चमकीले बिंदु ही।

उन्हें अधिक अच्छी तरह कैसे देखा जाये?

कागज़ पर स्याही से बने छोटे से बिंदु को तुम आवर्धक लैंस से देख सकते हो। देखा है कभी? यों देखने में वह छोटा-सा बिंदु ही लगता है, लेकिन आवर्धक लैंस से देखो तो खूब बड़ा "झबरीला" धब्बा लगेगा। कागज़ भी चिकना कागज़ नहीं लगता, रोयेंदार ऊनी कपड़े जैसा लगता है।

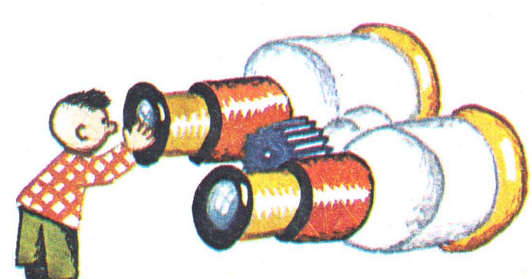
आवर्धक लैंस से अपनी उंगली देखो तो वह बहुत बड़ी और मोटी लगती है। उस पर हर रेखा को अच्छी तरह देखा जा सकता है।

लेकिन कागज़ पर बिंदु और अपनी उंगली तो ऐसी चीज़ें हैं जो हमारे बिल्कुल पास ही हैं। आवर्धक लैंस को इनके पास ले जाया जा सकता है। आकाश के पास तो इसे नहीं ले जाया जा सकता।

पता है, आकाश के लिए भी अपने आवर्धक लैंस हैं!

तुमने कभी बाइनोकुलर देखा है? शायद देखा होगा। बाइनोकुलर भी तो आवर्धक लैंस है। बस यह वैसा नहीं है, जिसे "उंगली के बिल्कुल पास" ले जाना चाहिए। बाइनोकुलर से हम दूर की चीज़ें अच्छी तरह देख सकते हैं।

बाइनोकुलर लेकर सड़क के उस ओर देखो। ऐसा लगता है जैसे सब कुछ पास आ गया, बड़ा हो गया, है न?





थियेटरों के लिए बने छोटे बाइनोकुलर चीज़ों को तीन गुना हमारे पास लाते हैं। नाविकों के पास जो बड़ी दूरबीनें होती हैं, वे चीज़ों को आठ गुना पास लाती हैं। ऐसी दूरबीन में चंद्रमा बहुत बड़ा लगता है, जैसे कि उसके और हमारे बीच की दूरी पहले से आठवें हिस्से के बराबर रह गयी हो। उस पर बहुत-से छोटे-छोटे धब्बे भी देखे जा सकते हैं, जो दूरबीन के बिना हमें नज़र नहीं आते थे।

अब मान लो हम अलमारी जितनी बड़ी दूरबीन बना लें तो? वह तो चंद्रमा को और भी पास दिखायेगी न? ऐन नाक के पास ले आयेगी न? ज़रूर।

इसके लिए तो दोनों आंखों के लिए दूरबीन का एक-एक हिस्सा बनाने की भी ज़रूरत नहीं है, जैसे कि बाइनोकुलरों में होते हैं। आकाश को तो एक आंख से भी देखा जा सकता है।

सो लोगों ने ऐसा "आधा बाइनोकुलर" बनाया, अलमारी जितना भी नहीं, पूरा बस जितना बड़ा।

लैंस लगे इस विशाल पाइप को टेलीस्कोप कहते हैं।

यह तो इतना बड़ा होता है कि दो दर्जन आदमी भी इसे न उठा सकें। ऐसे टेलीस्कोप को मज़बूत आधार पर रखना पड़ा। इसे घुमाने का काम भी हाथों से नहीं हो सकता, यह काम बिजली की मोटरें बहुत-से दांतेदार चक्कों की मदद से करती हैं।

ऐसे हर टेलीस्कोप के लिए बहुत बड़ा घर – विशाल, गुम्बदनुमा मीनार बनायी जाती है।

ऐसी मीनार की छत खोली और बंद की जा सकती है। जब आकाश को देखना होता है, तो छत को खोल देते हैं। जब काम खत्म हो जाता है तो छत बंद कर देते हैं ताकि टेलीस्कोप बारिश से भीगे नहीं।

टेलीस्कोप बड़ी जटिल और महंगी चीज़ है।

लेकिन कितना बड़ा करके दिखाता है यह! कई सौ, यहां तक कि हज़ार गुना बड़ा करके। ऐसे टेलीस्कोप में देखते हुए एक किलोमीटर दूर रखी किताब पढ़ी जा सकती है और वह ऐसे ही नज़र आयेगी जैसे कि वह एक कदम दूर रखी हो!

ऐसी बढ़िया दूरबीनों-टेलीस्कोपों की मदद से लोगों ने सारे आकाश का प्रेक्षण किया है। उन्होंने सूर्य, चंद्रमा और तारों को बड़े गौर से देखा है।

और इस तरह लोग पृथ्वी के चारों ओर जो कुछ है उसके बारे में बहुत-सी रोचक बातें जान पाये हैं।

टेलीस्कोप ने लोगों को बहुत कुछ बताया है।

यह पता चला है कि सूर्य विराट गोला है। चंद्रमा भी विशाल गोला है। तारे भी भीमकाय गोले हैं। तारे बहुत दूर हैं, बस इसीलिए छोटे-छोटे लगते हैं।

सड़क की बत्ती जब बहुत दूर हो तब वह भी तो एक छोटा-सा बिंदु ही लगती है।

अंतरिक्ष में जितने भी गोले हैं उन सबको "खगोलीय पिंड" कहते हैं।

वे सभी बहुत भिन्न-भिन्न हैं।

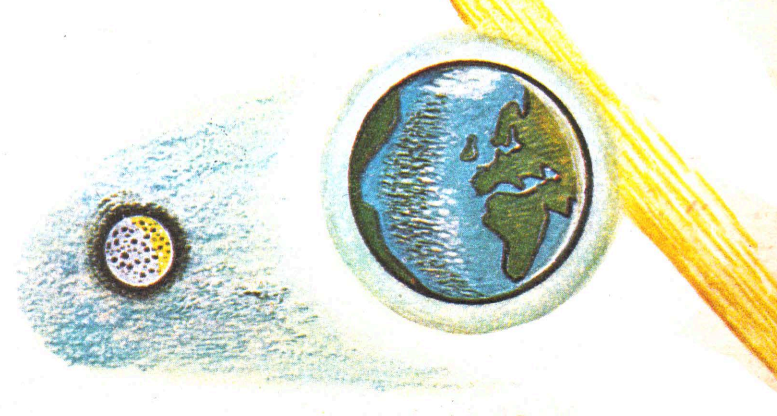
सूर्य आग से बना है, केवल आग से। उसके अंदर कुछ भी ठोस नहीं है। अगर सूर्य जितना बड़ा कोई दैत्य होता तो वह आराम से सूर्य को डंडे से बेध सकता, जैसे अलाव की आग हम डंडी से बेधते हैं। सूरज का कुछ भी न बिगड़ता। हां, डंडा तुरंत ही जल जाता।

तारे हमारे सूर्य से बहुत मिलते-जुलते हैं। वे भी आग से बने हैं।

तारे भी सूर्य की ही भांति विशाल अग्नि-पिंड हैं। इनमें कई सूर्य से भी बड़े हैं।

सूर्य हमारे अधिक निकट है, इसीलिए वह इतना बड़ा लगता है। इसीलिए वह इतना चमकता है और गरमी देता है। तारे सूर्य की अपेक्षा कहीं अधिक दूर हैं, इसीलिए उनका प्रकाश मंद होता है और गरमी तो बिल्कुल ही नहीं होती।

चंद्रमा भी गोला है, लेकिन वह पत्थर का गोला है, ठंडा और ठोस। पृथ्वी जैसा। चंद्रमा स्वयं नहीं चमकता।





ठंडे पत्थर तो बत्तियां नहीं हो सकते न। चंद्रमा आकाश पर केवल इसलिए दिखायी देता है कि सूर्य उसे प्रकाशित करता है। सूर्य बुझ जाये तो चंद्रमा भी बुझ जायेगा।

हमने चंद्रमा, पृथ्वी और सूर्य के चित्र पास-पास बनाये हैं। चंद्रमा और पृथ्वी तो इस पृष्ठ पर आ गये हैं, लेकिन सूर्य का एक छोटा-सा "कोना" ही; उसे तो पूरी एक अलमारी जितना बड़ा बनाना चाहिए। पृथ्वी और चंद्रमा की तुलना में वह इतना बड़ा है!

खगोलीय पिंड अंतरिक्ष में एक दूसरे से बहुत दूर-दूर हैं। यदि हम पृथ्वी को चैरी की बेरी जितना मानें, तो मटर के दाने जितने चंद्रमा को उससे आधे मीटर की दूरी पर रखना चाहिए। ऐसे में सूर्य अलमारी जितना बड़ा होगा और पृथ्वी से २०० मीटर दूर होगा!

सबसे पास का तारा भी सूर्य की भांति अलमारी जितना होगा, लेकिन उस तक दूरी इतनी होगी कि उसे अमरीका या आस्ट्रेलिया में रखना होगा।

ऐसी दूरियां हैं खगोलीय पिंडों के बीच।

चंद्रमा हमारे सबसे निकट है। लेकिन उस तक पहुंचने के लिए भी हवाई जहाज़ को दो हफ़्ते लगेंगे – जबकि वह बिना रुके उड़ता जाये।

लेनिनग्राद जैसे शहर की कल्पना करो। इस बड़े शहर को पैदल पार करने के लिए तुम्हें लगातार पांच घंटे चलना होगा। हवाई जहाज़ इस शहर के ऊपर से डेढ़ मिनट में गुज़र जायेगा। इतनी तेज़ उड़ता है वह!

इतनी तेज़ उड़ने पर भी चंद्रमा तक पहुंचने में दो हफ़्ते लगेंगे। हां, बहुत दूर है चंद्रमा! तो भी दूसरे खगोलीय पिंडों की तुलना में वह हमारे बहुत पास है।

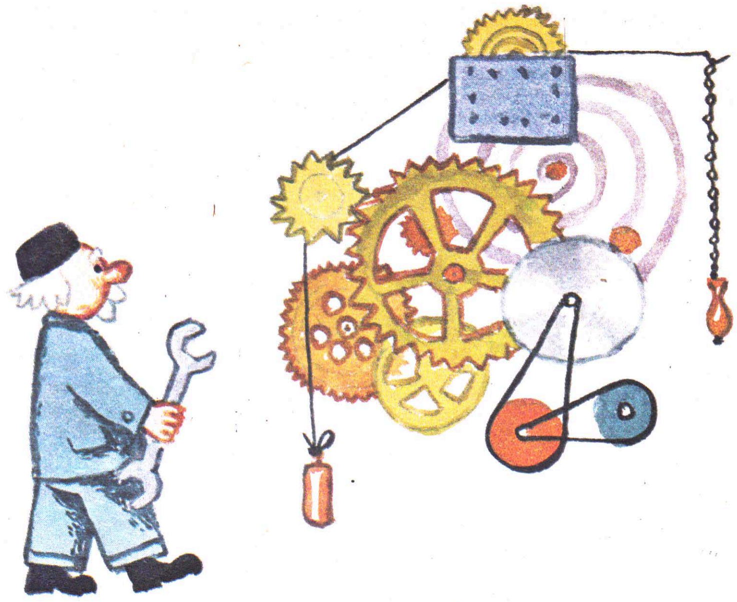
सूरज तक की दूरी तय करने में हवाई जहाज़ को पंद्रह साल लगें! स्कूल छात्र हवाई जहाज़ में बैठें और निकलें तो दाढ़ी-मूंछोंवाले बड़े आदमी।

तारों तक तो इस गति से पहुंचा ही नहीं जा सकता। रास्ते का शुरू का हिस्सा भी पार नहीं होगा कि आदमी बूढ़ा हो जायेगा।

कैसा अपरिमेय है अंतरिक्ष!

और वहां सर्वत्र केवल निर्वात ही है!

इस निर्वात में सूर्य कैसे लटका हुआ है? चंद्रमा क्यों नहीं गिरता? पृथ्वी कैसे टिकी हुई है?



अंतरिक्ष में सब कुछ किसके सहारे टिका हुआ है?

एक गेंद उठाओ और फिर उसे छोड़ दो। गेंद तुरंत ज़मीन पर गिर पड़ेगी। गेंद तो हवा में नहीं लटकी रह सकती न? गेंद ज़रूर किसी चीज़ पर टिकी होनी चाहिए। या तो वह फ़र्श पर पड़ी हो, या पानी पर तैरती हो, या धागे पर लटकती हो।

संसार में हर चीज़ किसी न किसी सहारे पर टिकी होती है। और यदि कोई ऐसा सहारा नहीं होता जिस पर वह टिकी रह सके तो वह गिर जाती है।

तुम कहोगे कि यह बात सच नहीं है? गुब्बारा या हल्का रोयां नीचे नहीं भी गिर सकते? ठीक है। वे तो ऊपर को भी उड़ जा सकते हैं। लेकिन ऐसा केवल इसलिए है कि गुब्बारा और रोयां हवा के सहारे टिके होते हैं। वे इतने हल्के होते हैं कि हवा में ऐसे ही तिरते हैं, जैसे कि टब में भरे पानी में लकड़ी का टुकड़ा। टब में से पानी निकाल दो, लकड़ी का टुकड़ा उसके तले पर बैठ जायेगा। यही बात हवा के लिए भी सही है। यदि पृथ्वी से सारी हवा हटायी जा सकती, तो हवा में तिरती सभी चीज़ें "वायुमंडल के तले पर" यानी पृथ्वी पर आ गिरतीं। गुब्बारे और रोयें भी गिर पड़ते। पक्षी और हवाई जहाज़ भी न उड़ सकते। वे भी तो हवा पर टिके होते हैं।

संसार में हर वस्तु यदि वह किसी पर टिकी नहीं रह सकती तो नीचे गिरती है।

अंतरिक्ष में तो टिकने का कोई सहारा नहीं है। अंतरिक्ष में निर्वात है। पृथ्वी किसी चीज़ पर रखी नहीं रह सकती, न वह तिर सकती है।

तो फिर पृथ्वी, चंद्रमा, सूर्य और तारों जैसे भीमकाय पिंड बिना किसी सहारे के निर्वात में कैसे लटके रह सकते हैं?

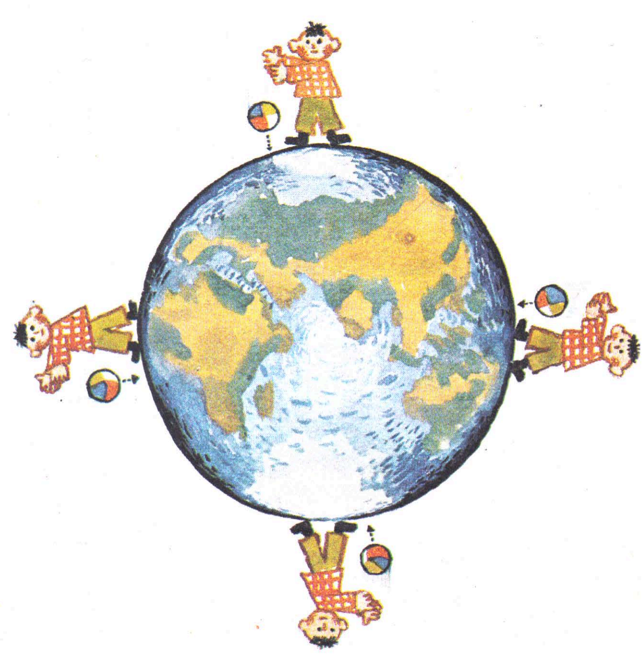
पृथ्वी गिरती क्यों नहीं?

गिरती नहीं? किसने कहा?

यही तो बात है कि पृथ्वी हमें साथ लिये सारा समय गिरती रहती है, अथाह गर्त में गिरती रहती है।

क्या है यह सब? ऐसे गोले पर बैठते तो डर लगता है जो कहीं गिरता जा रहा है। अगर कहीं गिर रहा है तो आखिर एक न एक दिन ज़रूर कहीं जा टकरायेगा?

पृथ्वी किधर गिर रही है? वह किससे टकरायेगी?



आओ, ज़रा यह सोचें कि सभी चीज़ें किधर गिरती हैं?

क्या मतलब किधर? नीचे की ओर? लेकिन यह "नीचा" है कहां?

क्या अजीब सवाल है! नीचा नीचे है।

आओ, हम सारी पृथ्वी का चित्र बनायें। पृथ्वी एक गोला है न? गोला है! इस गोले पर चारों ओर लोग रहते हैं न? चारों ओर रहते हैं।

तो लो, हमने पृथ्वी के गोले पर चारों ओर चार बालक बना दिये हैं। चारों बालकों की गेंदें पृथ्वी पर गिरेंगी। सभी बालक कहेंगे कि उनकी गेंद नीचे गिरी है।

लेकिन केवल एक बालक की गेंद "नीचे" गिरते हुए हमारे चित्र पर सचमुच नीचे आयी है। दूसरे की गेंद "नीचे" गिरते हुए हमारे चित्र पर दायें को गयी है, तीसरे की गेंद बायें को और चौथे की तो ऊपर को ही।

अब यदि हम किताब को उलटा करके देखें तो चौथे बालक की गेंद नीचे जायेगी और पहले की ऊपर को।

इसका मतलब है कि "नीचे" कहीं भी हो सकता है – नीचे, बगल में और ऊपर भी।

"नीचे" पृथ्वी है, पृथ्वी का गोला है।

पृथ्वी पर जो कुछ भी है वह पृथ्वी पर गिरता है, चारों ओर से पृथ्वी पर ही आता है।

पृथ्वी चारों ओर जो कुछ है उसे अपनी ओर खींचती है, जैसे चुम्बक लोहे की कीलें खींचता है।

यह मत सोचो कि पृथ्वी ही ऐसी "लालची" है। सभी वस्तुएं एक दूसरी को अपनी ओर खींचती हैं, लेकिन उनकी शक्ति बहुत क्षीण होती है।

अलमारी सोफ़े को अपनी ओर खींचती है, लेकिन इतनी कम शक्ति से कि वह कभी उसे टस से मस नहीं कर सकती। सोफ़ा तो क्या गेंद तक को वह नहीं हिला सकती।

मकान अलमारी को अपनी ओर खींचता है। लेकिन वह भी अलमारी को हिला पाने में असमर्थ है।

पहाड़ मकान को अपनी ओर खींचता है, लेकिन वह भी मकान को ज़रा-सा हिला तक नहीं सकता।

लेकिन पृथ्वी उन सबसे कहीं बड़ी है और वह इन सबको इतनी ज़ोर से अपनी ओर खींचती है कि इसका पता तुरंत चलता है। पृथ्वी ने अलमारी को इस तरह अपनी ओर खींच लिया है, इस तरह उसे पकड़े हुए है कि तुम उसे अपनी जगह से हटाकर तो देखो! तुम कहते हो अलमारी भारी है? "भारी" का मतलब ही है "पृथ्वी द्वारा अपनी ओर ज़ोर से खींचा हुआ"।

यदि अचानक ऐसा हो जाये कि पृथ्वी पर जो कुछ है उसे पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित न करे तो हमारी यह अलमारी फ़र्श से हट जाये और कमरे में यों तैरने लगे जैसे पानी में तिनका। और तब वह भारी नहीं गुब्बारे जैसी हल्की हो।

बस इसी तरह सभी वस्तुएं एक दूसरी को अपनी ओर खींचती हैं, आकर्षित करती हैं। लेकिन खींच वही पाती है जो अधिक शक्तिशाली होती है, अधिक बड़ी होती है। छोटी, कमज़ोर चीज़ बड़ी, शक्तिशाली चीज़ की ओर खिंचती चली जाती है, उस पर जा गिरती है।

यही कारण है कि सदा छोटी वस्तु ही बड़ी पर गिरती है।

अब हम इस प्रश्न पर लौटते हैं कि अंतरिक्ष में स्वयं पृथ्वी किधर गिर रही है?

चंद्रमा की ओर? नहीं। चंद्रमा तो पृथ्वी से छोटा है। तारों की ओर? वे बहुत दूर हैं। सूर्य की ओर? हां, सूर्य की ओर ही।

छोटी वस्तु सदा बड़ी पर गिरती है। हमारी विशाल धरती सूर्य के सामने बिल्कुल छोटी-सी ही है।

इसीलिए पृथ्वी सूर्य की ओर गिर रही है!

लेकिन यह तो बड़ी भयानक बात है! सूर्य तो अग्नि-पिंड है। इसका मतलब है जल्दी ही पृथ्वी सूर्य पर जा गिरेगी और आग की लपटों में समा जायेगी? हम सब जैसे भट्ठी में जल जायेंगे?

डरो मत। किसी की ओर गिरते-गिरते उस पर न गिरना भी संभव है। उसके बगल से गिरा जा सकता है।

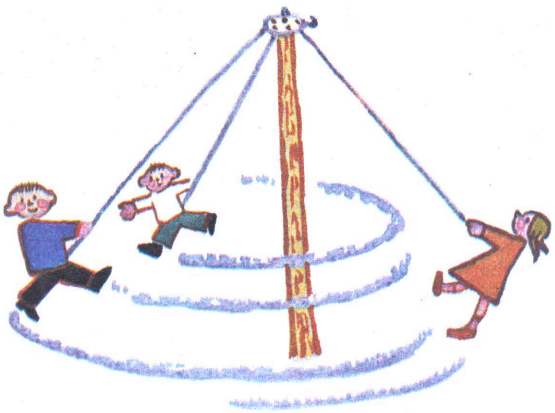
"वामन डग" नाम का एक झूला होता है। शायद तुम्हारे शहर के पार्क में भी हो। इसमें एक खंभे के ऊपर एक घूमता हुआ छल्ला लगा रहता है। इस छल्ले से बंधी कुछ ज़ंजीरें लटकती हैं। इस ज़ंजीर का सिरा पकड़कर खंभे से दूर हट जाओ और खड़े-खड़े ही घुटने मोड़ लो तो क्या होगा?

तुम सीधे खंभे की ओर बढ़ जाओगे, जैसे कि वह तुम्हें अपनी ओर खींच रहा हो।

लेकिन यदि तुम पहले एक ओर को दौड़ो और फिर टांगें मोड़ो?

तब तुम खंभे के बगल से आगे निकल जाओगे।

इस झूले पर झूलते हुए सारा समय यही लगता है कि खंभा तुम्हें अपनी ओर खींच रहा है। इसलिए तुम सीधे नहीं बढ़ जाते हो, बल्कि खंभे की ओर मुड़-मुड़ जाते हो, उसकी ओर गिरते हो। लेकिन तुम तेज़ी से



बढ़ते हो, इसलिए एकदम तिरछे नहीं मुड़ सकते, वक्र रेखा में मुड़ते हो, सो हर बार खंभे की ओर गिरने के बजाय उसके बगल से आगे बढ़ जाते हो, उसका चक्कर लगाते हो।

कुछ ऐसी ही बात अंतरिक्ष में होती है। वहां खंभे की जगह सूर्य है और तुम्हारी जगह पृथ्वी।

यदि पृथ्वी एक स्थान पर खड़ी होती तो वह सीधे सूर्य की ओर गिरती।

लेकिन यही तो सारी बात है कि वह एक स्थान पर नहीं खड़ी है। वह एक ओर को "उड़ती" है, मानो उसने सूरज के बगल से आगे निकलकर कहीं दूर उड़ जाने के लिए दौड़ लगायी हो। सूर्य उसे अपनी ओर खींचता है। पृथ्वी उसकी ओर मुड़ती है। लेकिन वह धीरे-धीरे, वक्र रेखा में मुड़ती है, क्योंकि उसकी अपनी गति काफ़ी तेज़ है। इसीलिए वह सूरज के पास नहीं पहुंचती है, बस उसकी परिक्रमा करती है, उसके गिर्द घूमती है।

वैसे ही जैसे झूले में तुम खंभे के गिर्द घूमते हो।

हां, तुम्हें बार-बार पैरों से ज़मीन पर धक्का लेना पड़ता है, ताकि रुको नहीं। ऐसा इसलिए होता है कि खंभे के ऊपर जो छल्ला है वह अच्छी तरह नहीं घूमता, रगड़ खाता है। हवा भी तुम्हें रोकती है। अंतरिक्ष में पृथ्वी को कुछ भी नहीं रोकता है। वहां सामने से बहती हवा भी नहीं है, छल्ले पर बंधी रस्सी भी नहीं है और रास्ते का ऊबड़-खाबड़पन भी नहीं है। वहां तो कुछ भी नहीं है। पृथ्वी कभी एक ओर को उड़ चली थी, बस इतना ही काफ़ी सिद्ध हुआ। तब से कुछ अरब बर्षों से वह सूर्य की परिक्रमा कर रही है और रुक नहीं सकती।

इसी तरह चंद्रमा भी अंतरिक्ष में गतिशील है।

हां, चंद्रमा सूर्य की नहीं पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी चंद्रमा से कई गुनी बड़ी है, सो चंद्रमा इस बड़ी पृथ्वी की ओर गिरता है, लेकिन उस पर गिर नहीं पाता – बगल से आगे निकल जाता है। क्योंकि चंद्रमा भी तेज़ी से एक ओर को उड़ रहा है और उसके लिए भी तेज़ी से मुड़ना कठिन है।

तो बात यह निकलती है कि सभी खगोलीय पिंड अंतरिक्ष में किसी भी सहारे पर नहीं टिके हुए हैं, बल्कि सभी कहीं गिरते जाते हैं, मगर बगल से निकलते रहते हैं।

इसीलिए वे सब सदा घूमते हैं, परिक्रमा करते हैं।

चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, पृथ्वी सूर्य की।

सूर्य भी पृथ्वी और चंद्रमा समेत एक स्थान पर नहीं खड़ा है।

वह भी किसी अथाह गर्त में, तारों के बीच कहीं बढ़ रहा है। ये तारे भी निर्वात में कहीं चक्कर काट रहे हैं।

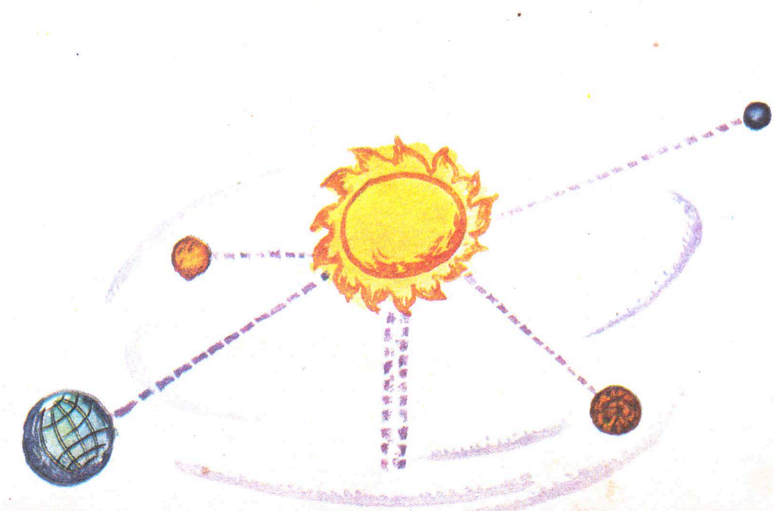
अंतरिक्ष में एक भी खगोलीय पिंड ऐसा नहीं है, जो एक स्थान पर खड़ा हो। सभी कहीं बढ़ते जाते हैं, अंतरिक्ष में स्थान की तो कोई कमी है नहीं।

लेकिन यह क्या अजीब बात है – जब तुम आकाश को देखते हो तो यह नहीं लगता कि खगोलीय पिंड कहीं दूर जाते जा रहे हैं। चंद्रमा तो आकाश पर चिपका हुआ ही लगता है। ऐसा इसलिए है कि चंद्रमा हम से बहुत दूर है।

तुमने कभी इस बात की ओर ध्यान दिया है कि समुद्र में ऐन क्षितिज के पास जब कोई जहाज़ नज़र आता है तो वह कितनी धीरे-धीरे रेंगता प्रतीत होता है? वास्तव में तो वह वहां तेज़ी से लहरों को काटता बढ़ रहा होता है। आकाश में हवाई जहाज़ जब एक बिंदु जैसा नज़र आता है तो वह भी कितनी धीरे-धीरे बढ़ता है।

चंद्रमा तो आकाश में हवाई जहाज़ से चार गुनी अधिक गति से बढ़ता है। ज़रा सोचो तो कि यदि हम उसके पास खड़े होते तो वह कितनी तेज़ी से हमारे सामने से गुज़र जाता? पृथ्वी से तो ऐसा लगता है कि वह मुश्किल से रेंग ही रहा है – इसका भी पता आस-पास के तारों को देखने से लगता है।

तारे तो चंद्रमा की तुलना में सैकड़ों हज़ारों गुना अधिक दूर हैं। इसीलिए वे बिल्कुल निश्चल लगते हैं। हालांकि वे चंद्रमा से कहीं अधिक तेज़ी से उड़ते जाते हैं।





सूर्य उगता और डूबता क्यों है?

तुम्हारा क्या ख्याल है क्या हम सूर्य के बिना रह सकते हैं? नहीं, कतई नहीं।

सूर्य पृथ्वी को प्रकाश और उष्मा देता है। सूर्य की उष्मा के बिना बीजों के अंकुर नहीं फूटते, पेड़ों पर पत्तियां नहीं उगतीं, खेत हरे-भरे नहीं होते। पशु-पक्षी, कीट-पतंगे धूप पाकर खुश होते हैं और हम, मनुष्य भी।

सूर्य के बिना अंधेरा होता है, ठंड होती है। सभी जीव रात को कहीं छिप जाने, सो जाने, ठंड और अंधकार का समय गुज़ारने की कोशिश करते हैं। जब सूर्योदय होता है तो सारी प्रकृति जाग उठती है।

सूर्य पृथ्वी पर जीवन का स्रोत है। उसकी आवश्यकता सभी को है। यही कारण है कि प्राचीनतम काल से ही लोग सूर्य देवता की पूजा करने लगे, उससे मिलने-वाली उष्मा के लिए आभार प्रकट करते थे, उसके उगने का स्वागत करते थे।

यह देखो, प्राचीन यूनान में सूर्य के बारे में कैसी कथा सुनायी जाती थी।

...मंद समीर बह चला है। पूरब में उजाला बढ़ता जाता है। उषा की देवी ऐओस अपने गुलाबी हाथों से वह द्वार खोलती है जहां से तेजस्वी सूर्य देवता – हीलियस अपने रथ पर निकलेगा।

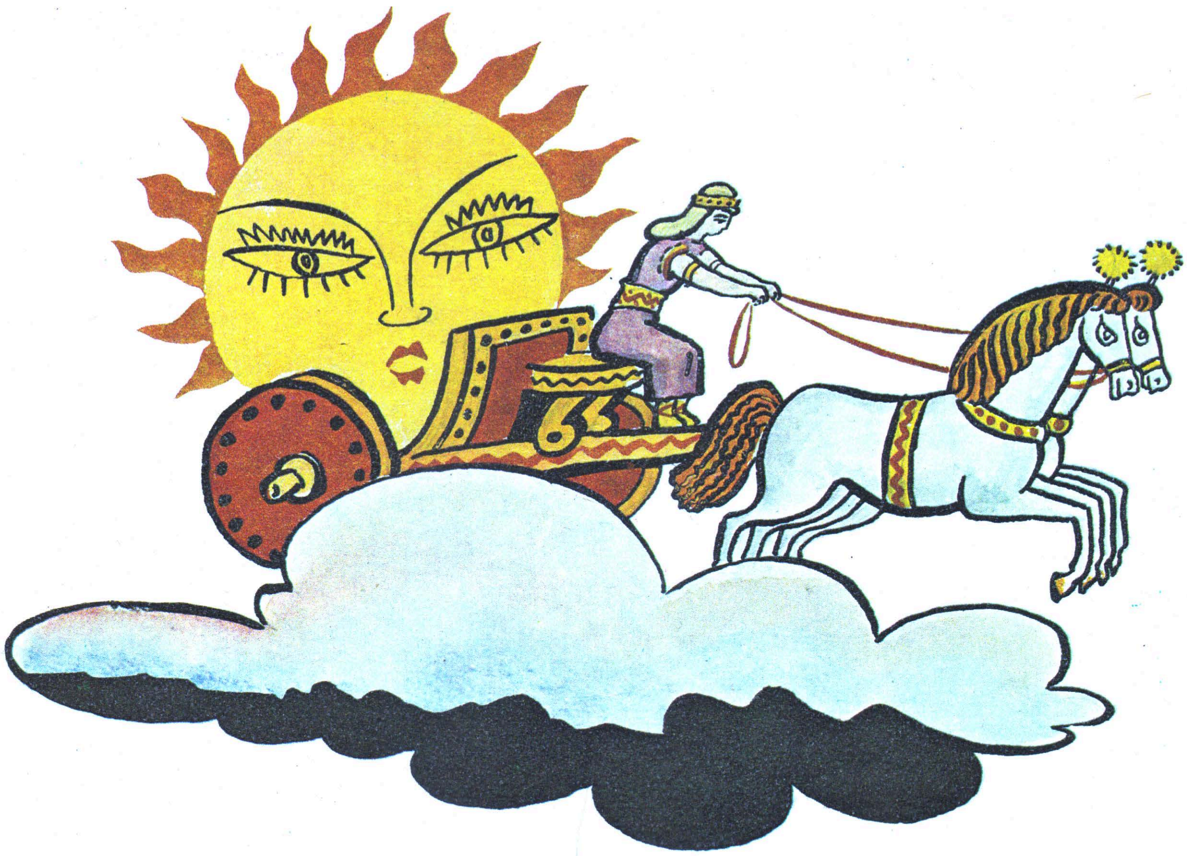
केसरी वस्त्र धारण किये अपने गुलाबी पंखों पर उषा की देवी उज्ज्वल आकाश पर उड़ आती है, जहां गुलाबी आभा छा गयी है। अपने स्वर्ण कलश से वह पृथ्वी पर ओस गिराती है और हीरों से चमकते ओस-कण फूल-पौधों पर बिखर जाते हैं। पृथ्वी पर सब कुछ सुरभित हो उठता है। जाग उठी धरती सूर्य देवता हीलियस के उदय का हर्षमय स्वागत करती है।

हेफ़ेस्त देवता के बनाये स्वर्ण-रथ में चार सपक्ष अश्व जुते हुए हैं। कांतिमय हीलियस इस रथ पर सवार होकर ओशियन के तट से आकाश को चलता है। पर्वत-शिखर रवि-किरणों से चमक उठते हैं। सूर्य देवता को देखते ही तारे आकाश से विलुप्त हो जाते हैं! एक एक करके वे रात्रि की गोद में छिप जाते हैं।

हीलियस देवता का रथ ऊपर ही ऊपर चढ़ता जाता है। देदीप्यमान मुकुट और लंबे चमकीले वस्त्र धारण किये वह आकाश पर चलता जाता है और अपनी जीवनदायी किरणें पृथ्वी पर भेजता है, उसे प्रकाश, उष्मा और जीवन प्रदान करता है।

अपनी दिवस-यात्रा समाप्त करके सूर्य देवता हीलियस ओशियन के पवित्र जल पर उतरता है। वहां





स्वर्ण-नौका उसकी प्रतीक्षा कर रही है। उस पर बैठकर वह पूरब को, सूर्य देश को लौटता है, जहां उसका अनुपम महल है। सूर्य देवता वहां रात को विश्राम करता है, ताकि अगले दिन फिर पहले जैसा तेज लिये उदय हो।

एक और कहानी सुनो जो ठंडे स्कैंडिनावियाई देशों के निवासियों ने बहुत पहले गढ़ी थी।

बहुत पहले की बात है। तब न सूर्य था, न चंद्रमा। पृथ्वी पर सदा अंधकार रहता था। सूर्य नहीं था, इसलिए पेड़ भी हरे-भरे नहीं होते थे, फूल नहीं खिलते थे, मैदानों में हरी-हरी घास नहीं उगती थी।

तब ओदिन नाम का महाबली देवता अपने भाइयों के साथ अग्नि-देश को गया। वहां अग्नि पाकर उसने सूर्य और चंद्रमा बनाये। देवताओं ने अब तक जो कुछ बनाया था उस सबसे अधिक सुंदर थे ये।

अब उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करनी थी, जो इनके रथ आकाश पर चलाया करे।

उन दिनों पृथ्वी पर एक आदमी रहता था, जिसके एक अत्यंत रूपवान बेटा था और उतनी ही रूपवती एक बेटी भी। पिता को अपनी संतान पर बहुत घमंड था। वह सोचता था कि संसार में उनसे अधिक सुंदर और कुछ नहीं हो सकता।

जब पिता को देवताओं की अनुपम रचनाओं के बारे में पता चला तो उसने अपनी बेटी का नाम रख दिया सुल जिसका अर्थ है सूर्य और बेटे का नाम रखा मनि, जिसका अर्थ है चंद्रमा।

देवताओं को उसका यह दंभ अच्छा नहीं लगा और उन्होंने इस व्यक्ति को कठोर दंड दिया।

ओदिन देवता सुल और मनि को आकाश पर ले गया और उन्हें सारथि बना दिया।

तब से सुल सूर्य के रथ के श्वेत अश्वों को चलाती है। प्रति दिन वह सूर्य को आकाश पर ले जाती है, बस रात को ही थोड़ा आराम कर पाती है।

उसका भाई मनि दूसरे रथ पर चंद्रमा का सारथि है।

तब से खेतों में अनाज उगने लगा है, बागों में फल पकते हैं, पहाड़ों पर हरे-भरे जंगल उगते हैं। लोग इन्हें देखकर खुश होते हैं और देवताओं का आभार प्रकट करते हैं।

लेकिन भाई-बहन कभी-कभी दुखी होकर रोने लगते

हैं। तब सूर्य और चंद्रमा पर धुंध-सी छा जाती है।

हां, ये तो कहानियां हैं, लेकिन वास्तव में सूरज कैसे चलता है? वह उगता और डूबता क्यों है, आकाश में एक ही जगह पर क्यों नहीं बना रहता?

याद है तुमने लकड़ी के घोड़ों पर सवार होकर चकफेरी का झूला झूला था और पास ही ऊंचे खंभे पर खूब बड़ा बल्ब तेज़ रोशनी दे रहा था। यह रोशनी चकफेरी के पीछे से प्रकट होती थी, पास से निकल जाती थी और फिर से चकफेरी के पीछे छिप जाती थी। कुछ देर तक रोशनी बिल्कुल नहीं दिखायी देती थी, अंधेरा रहता था, लेकिन फिर से वह प्रकट होती, तुम्हारे लिए उजाला करती और फिर से छिप जाती थी।

लेकिन खंभा तो अपनी जगह पर खड़ा था। खंभे पर जलता बल्ब रोशनी दे रहा था, जबकि चकफेरी घूम रही थी, कभी तुम्हें इस रोशनी से छिपा देती थी और कभी फिर इस रोशनी में ले आती थी।

यही बात पृथ्वी पर लोगों के साथ होती है। पृथ्वी अंतरिक्ष में सूर्य की परिक्रमा ही नहीं करती है। परिक्रमा करने के साथ-साथ वह चकफेरी की तरह घूमती भी है: कभी हमें सूरज से छिपा देती है, कभी सूरज के सामने ले आती है।

हमें लगता है कि पृथ्वी अपनी जगह खड़ी है और सूरज हमारे गिर्द घूम रहा है।

ऐसा हमें इसलिए लगता है क्योंकि पृथ्वी का गोला बहुत बड़ा है। इतना विशाल गोला किसी मामूली लट्टू की तरह तेज़ी से नहीं घूम सकता। वह धीरे-धीरे एकसमान गति से, धचके खाये बिना घूमता है।

पूरे चौबीस घंटे में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाती है। इसीलिए हमें उसके घूमने का पता नहीं लगता।

समुद्र में यदि बहुत बड़े जहाज़ पर जा रहे होओ तो वहां भी यह पता नहीं चलता कि जहाज़ कैसे मुड़ रहा है।

हां, अगर तट दिखायी दे रहा हो तो उससे जहाज़ के मुड़ने का पता चल सकता है। लेकिन यदि तट ओझल हो चुका है? यदि जहाज़ खुले सागर में जा रहा है? ऐसी हालत में सूरज से ही जहाज़ के मुड़ने का पता चल सकता है। मान लो तुम डेक पर उस तरफ़ बैठे हो जहां छाया है। अचानक देखते हो कि धूप तुम्हारी तरफ़ बढ़ रही है। इसका मतलब है कि जहाज़ मुड़ रहा है, उसका यह पहलू सूरज की ओर आ रहा है।

यही बात पृथ्वी के साथ होती है।

सूर्य जब मकान या जहाज़ के पीछे से निकल रहा हो तो उसे ध्यान से देखो। लगता है कि सूर्य धीरे-धीरे आकाश पर रेंग रहा है। वास्तव में हमारी पृथ्वी विशाल जहाज़ की तरह धूप की ओर मुड़ रही है।

सूर्य का प्रकाश पृथ्वी के केवल उस आधे भाग पर पड़ता है, जो उसकी ओर मुड़ा होता है। दूसरे आधे भाग पर इस समय अंधकार होता है। वहां रात होती है। फिर जब पृथ्वी घूम जायेगी तो जहां दिन था – वहां रात हो जायेगी और जहां रात थी वहां दिन हो जायेगा।

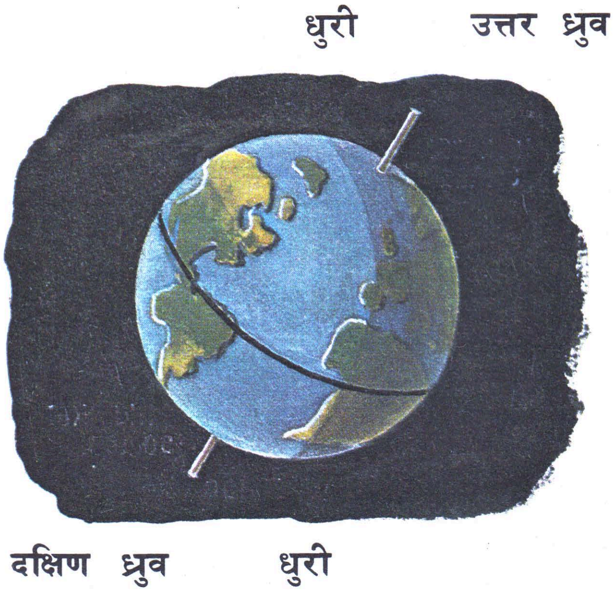
तुम अच्छी तरह इस बात की कल्पना कर सको कि पृथ्वी कैसे घूमती है, इसके लिए चित्र में हमने पृथ्वी की धुरी बना दी है। वास्तव में तो कोई धुरी नहीं है। यह तो हमने कल्पना की है।

वे स्थान, जहां से यह कल्पित धुरी पृथ्वी के गोले से बाहर निकली होनी चाहिए, ध्रुव कहलाते हैं। ऊपरवाला उत्तर ध्रुव कहलाता है और नीचेवाला दक्षिण ध्रुव। ध्रुवों के ऐन बीचोंबीच पृथ्वी की परिधि पर रेखा खींचें तो वह भूमध्य रेखा होगी।

हम-तुम भूमध्य रेखा और उत्तर ध्रुव के बीच पृथ्वी के ऊपरी भाग पर रहते हैं। इसे उत्तरी गोलार्ध कहते हैं।

सूर्य की एक परिक्रमा करने में पृथ्वी को काफ़ी समय लगता है। एक साल में ही वह एक परिक्रमा कर पाती है। इस बीच वह अपनी धुरी पर ३६५ बार घूम जाती है। इसीलिए साल में ३६५ दिन और ३६५ रातें होती हैं।

चंद्रमा भी सूर्य की ही भांति प्रति दिन उगता और डूबता है। यदि तुम तारों को ध्यान से देखो तो पाओगे कि तारों भरा सारा आकाश भी धीरे-धीरे घूमता है। किसी चमकीले तारे पर नज़र रखो। अभी वह यहां है। घंटे भर बाद साफ़ पता चलेगा कि वह अपनी जगह से हट गया है। लेकिन पूरा एक चक्कर लगाकर फिर से अपने पहलेवाले स्थान पर पहुंच जायेगा।



ऐसा इसलिए होता है कि पृथ्वी सारा समय धीरे-धीरे घूमती रहती है। हम विराट चकफेरी पर बैठे हैं और उसके साथ घूमते रहते हैं। लेकिन हमें लगता यह है कि हमारे चारों ओर सब कुछ, सारा अंतरिक्ष घूम रहा है।

अब ज़रा यह कल्पना करो कि तुम चकफेरी की छत पर बैठे हो, उस जगह जहां प्रायः झंडी लगी होती है। चकफेरी घूम रही है, तुम सिर ऊपर उठाये आकाश को देख रहे हो। तुम्हारे चारों ओर मकान और पेड़ घूमते हैं, लेकिन वह बादल जो तुम्हारे सिर के ऐन ऊपर है, एक ही जगह पर बना रहता है। मानो वहां "कील" ठुकी हो और बाकी सब कुछ गत्ते पर बना हो और यह गत्ता इस "कील" पर घूम रहा हो।

पृथ्वी का ध्रुव चकफेरी की छत जैसा है। यदि हम-तुम ध्रुव पर खड़े हों तो हमारे सिर के ऐन ऊपर ध्रुव तारा होगा। याद है हमने इस तारे का ज़िक्र किया था? तो यह तारा ही "कील" है।

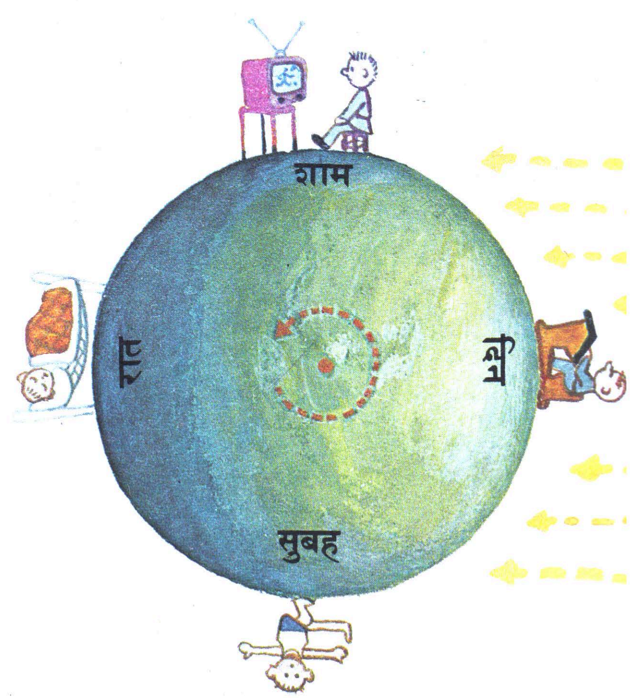
पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है। सारा आकाश मंडल जैसे उससे विपरीत दिशा में घूमता है, लेकिन ध्रुव तारा एक ही स्थान पर खड़ा रहता है।

यदि हम ध्रुव से भूमध्य रेखा पर आ जायें तो यहां तारों भरा आकाश बिल्कुल दूसरी ही तरह चलेगा। यहां से ध्रुव तारा क्षितिज पर निश्चल खड़ा लगता है, उस ओर जहां उत्तर ध्रुव है। यदि भूमध्य रेखा पर खड़े होकर पूरब की ओर देखा जाये तो ताराच्छादित आकाश थियेटर के विशाल पर्दे की तरह मंथर गति से ऊपर उठता नज़र आयेगा। पश्चिम में तारे इसी तरह एकदम सीधे क्षितिज की ओर झुकते आते हैं।

भूमध्य रेखा पर सूर्य और चंद्रमा को डूबते देखना बड़ा रोचक होता है। वे भी तारों की ही भांति एकदम सीधी रेखा में नीचे आते हैं, जैसे कि कोई उन्हें धागे से बांधकर क्षितिज के पीछे डुबो रहा हो।

हम-तुम न ध्रुव पर रहते हैं, न भूमध्य रेखा पर। हम बीच में रहते हैं। इसलिए ध्रुव तारा सिर के ऐन ऊपर नहीं, बल्कि नीचे को नज़र आता है। इसीलिए सूरज और चंद्रमा हमारे यहां जब उगते हैं तो ऐसा लगता है जैसे वे धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़ते हुए नत रेखा में ऊपर उठ रहे हों। और जब डूबते हैं तो जैसे ढलान से उतरते हैं।

यह सब इसलिए होता है कि पृथ्वी एक गोला है और यह गोला घूमता है।





गर्मियों में धूप अधिक तेज़ क्यों होती है?

गर्मियों में धूप जाड़ों से अधिक तेज़ क्यों होती है? क्या इसलिए कि गर्मियों में पृथ्वी सूर्य के अधिक समीप आ जाती है। यदि ऐसा होता तो गर्मियों में आकाश पर सूर्य जाड़ों से अधिक बड़ा दिखायी देता। सभी वस्तुएं पास से अधिक बड़ी नज़र आती हैं और दूर से छोटी। सूर्य तो आकाश पर सदा एक ही आकार का होता है – गर्मियों में भी और जाड़ों में भी।

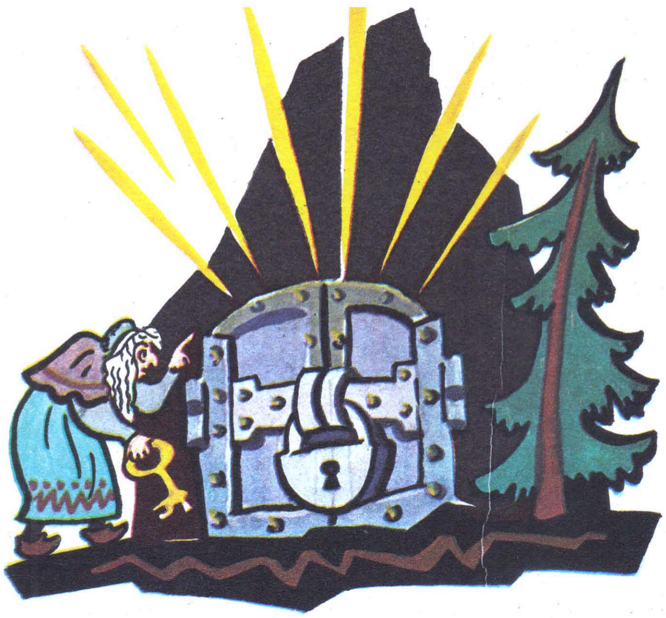
हां, लगता है, बात हमें गर्मी देनेवाली इस "भट्ठी" तक की दूरी की नहीं है।

ज़रा यह याद करो कि गर्मियों में और जाड़ों में सूर्य आकाश पर कहां होता है। गर्मियों में वह अधिक ऊपर उठता है और जितना अधिक वह ऊपर उठता है, उतनी ही उसकी किरणें तेज़ होती हैं। दिन में तो धूप सुबह से अधिक तेज़ होती है न? गर्मियों के दिन भी जाड़ों से अधिक लंबे होते हैं। गर्मियों में सूरज जल्दी उगता है और देर से डूबता है। लंबे दिन में वह हवा को, पृथ्वी को और हमें-तुम्हें अच्छी तरह गरमा देता है, यही कारण है कि गर्मियों में जाड़ों की अपेक्षा ताप-मान अधिक होता है।

उत्तरी देशों में गर्मियों के बाद पतझड़ का मौसम आता है। सूर्य दिन प्रति दिन आकाश पर नीचे आता जाता है। वह अधिक देर से उदय होता है और पहले से जल्दी अस्त हो जाता है। दिन प्रति दिन उससे मिलने-वाला प्रकाश और उष्मा घटते जाते हैं। ठंड बढ़ती जाती है और अंधेरा भी।

फिर जाड़ा आता है। दिसम्बर में सूर्य कुछ घंटों के लिए ही आकाश पर प्रकट होता है, अक्सर बादलों के कारण उसके भी दर्शन नहीं हो पाते। वह आकाश पर बिल्कुल नीचे होता है: लगता है मकानों, पेड़ों के पीछे ही कहीं है।

सुदूर उत्तर में, ध्रुवीय प्रदेश में तो और भी बुरी हालत होती है। वहां जाड़ों में सूर्य और भी अधिक क्षीण पड़ जाता है। वह क्षितिज से ज़रा-सा ही ऊपर उठता है। दिसम्बर के मध्य तक उसमें उठने की भी क्षमता नहीं रहती। वह घंटे-दो घंटे के लिए आकाश पर ज़रा उजाला भर कर देता है और फिर से रात हो जाती है। इसके कुछ दिनों बाद तो आकाश पर उजाला तक नहीं होता। कुछ हफ़्तों तक काली रात छायी रहती है। बहुत ही ठंड हो जाती है। चारों ओर अभेद्य अंधकार होता है।



मन को बहुत ढाढ़स देते पर भी हर बार डर लगता है। कहीं सूरज सदा के लिए तो नहीं चला गया? कहीं अंधकार और ठंड का यह राज सदा के लिए हो गया तो? आदमी तब कैसे जियेगा? कैसे उसका उद्धार होगा?

अतीत में तो लोगों को और भी अधिक डर लगता था। तब न पुस्तकें थीं, न स्कूल। किसी को ठीक से कुछ पता नहीं था। कोई ऐसा नहीं था, जिससे वे कुछ पूछ सकते।

उदास मन से वे विदा होते सूर्य को, काली चट्टानों को, निद्रामग्न होते वन को देखते और कथा-कहानियां सोचते।

जाड़ों में जहां सूर्य बहुत दिनों के लिए डूब जाता है, सुदूर उत्तर का वह देश इन कहानियों में अंधकार और ठंड का देश पोहयोला हो गया। दुष्ट बूढ़ी जादूगरनी लोउहा पोहयोला पर राज करती थी।

वहां से थोड़ी दूर सूर्य-स्नात देश कलेवल में तीन महाबली रहते थे, तीनों गहरे मित्र थे।

एक था बूढ़ा मनीषी वायनेमेयनेन। वह इतनी अच्छी तरह गाता था कि वन के पशु-पक्षी भी उसके गीत सुनने के लिए जमा हो जाते थे।

दूसरा था लोहार इलमरिनेन। उसके हाथों में गज़ब का हुनर था और वह अथक परिश्रम करता था।

तीसरा था निडर और हंसमुख शिकारी लेम्मिन-कायनेन।

अंधकार और ठंड का देश पोहयोला इन महाबलियों को आकर्षित करता था। बात यह थी कि बुढ़िया लोउहा के एक बेटी थी – बहुत ही सुन्दर। यह सुंदरी आकाश पर सतरंगे इंद्रधनुष पर बैठी चांदी के करघे पर सोने का कपड़ा बुनती थी।

तीनों महाबली बारी-बारी से सुंदरी का रिश्ता मांगने गये, लेकिन वह बड़ी नखरीली थी।

उधर बुढ़िया भी महाबलियों को बड़ी यंत्रणाएं देती थी। उन्हें एक से एक कठिन कारनामे करने को कहती और फिर भगा देती।

पर आखिर इलमरिनेन लोहार से बुढ़िया ने अपनी बेटी का विवाह कर दिया। इसके लिए भी वह तब राज़ी हुई जब इलमरिनेन ने लोभी बुढ़िया के लिए जादुई चक्की सामपो बना दी। इस चक्की में कुछ नहीं डालना होता था और उसे चलाना भी नहीं होता था। वह अपने आप ही चलती थी और उसमें से जो चाहो वही निकलने लगता था – आटा चाहो आटा, नमक चाहो नमक, और तो और पैसे भी निकलते थे।

इलमरिनेन अपनी जवान पत्नी को लेकर घर लौटा। लेकिन वह दुष्ट स्वभाव की औरत निकली। एक दिन ग्वाले के लिए रोटी पकाते हुए उसने उसमें कंकड़ मिला दिये। ग्वाले को बड़ा बुरा लगा, उसने गउओं के झुंड को भेड़ियों का झुंड बना दिया और इन भेड़ियों ने दुष्ट मालकिन को चीर डाला।

तब महाबलियों ने निश्चय किया कि वे बुढ़िया लोउहा से जादुई चक्की सामपो वापस ले लेंगे। बुढ़िया तो अपने लिए ही धन-दौलत जमा कर रही थी, जबकि चक्की सभी लोगों को सुखी बना सकती थी।

पोहयोला के सभी योद्धा महाबलियों का सामना करने निकले। लेकिन वायनेमेयनेन गाने लगा और सभी योद्धा सो गये। महाबलियों ने बुढ़िया का खज़ाना खोला, सामपो चक्की ली और नाव पर बैठकर समुद्र के रास्ते घर लौट चले।

इस बीच बुढ़िया जाग गयी। उसने देखा कि सामपो चक्की नहीं है। गुस्से से आग बबूला हो उठी दुष्ट जादूगरनी, महाबलियों का पीछा करने लगी। उसने जादू छोड़ा और लो, नाव पर घना कोहरा उतर आया – कहीं कुछ नज़र न आता था। लेकिन महाबली डरे नहीं। वायनेमेयनेन ने अपनी तलवार निकालकर कोहरा काट डाला। तब बूढ़ी जादूगरनी ने बड़ी भयानक लहरें नाव पर छोड़ीं। लेकिन महाबली उनसे भी बचकर निकल गये। तब लोउहा ने हवाओं को अपनी मदद के लिए बुलाया।

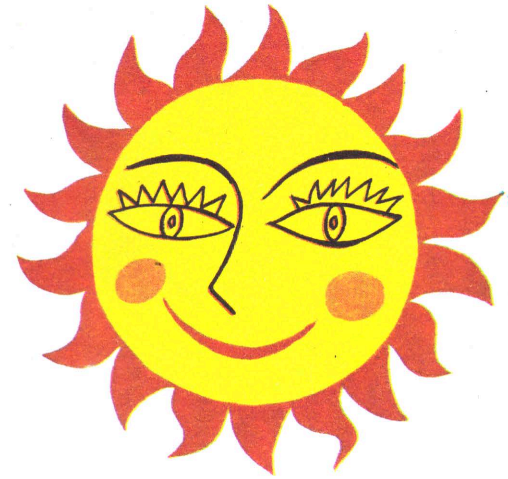
वे तूफ़ान बनकर नाव पर टूट पड़ीं। लेकिन यशस्वी महाबली तूफ़ान के सामने भी टिके रहे।

दुष्ट चुड़ैल पोहयोला के सभी निवासियों को साथ लेकर अपने शत्रुओं से लड़ने चली। घमासान युद्ध हुआ। उसमें भी वह महाबलियों को मार नहीं पायी।

बस सामपो चक्की समुद्र में गिर पड़ी और लहरों से टकराकर टूट गयी। लेकिन बूढ़े मनीषी वायनेमेयनेन ने उसके बचे-खुचे टुकड़े जमा किये, एक मैदान पर उन्हें जोड़ा और कहा:

"कलेवल देश में सुख-चैन हो!"

और तुरंत ही खेतों में हवा ने फ़सल बिगाड़ना, पाले ने कोमल अंकुरों को मारना और घटाओं ने सूरज को छिपाना बंद कर दिया।



उधर बुढ़िया ने इन वीरों से बड़ा ही भयानक बदला लेने की ठानी। उसने उन पर ऐसी विपदा ढाने की सोची, जिसे कोई नहीं झेल सकता।

उसने ऐसा मौका देखा जब वायनेमेयनेन जंगल में अपने गीत गा रहा था। इतनी अच्छी तरह वह गा रहा था कि सूर्य और चंद्रमा भी उसके गीत सुनने के लिए नीचे उतर आये, चीड़ वृक्षों की टहनियों पर बैठ गये।



दुष्ट बुढ़िया दबे पांव वहां पहुंच गयी। झपटकर सूरज और चंद्रमा को पकड़ लिया और लाकर अपने तहखाने में बंद कर दिया।

घुप्प अंधेरा हो गया और ठंड भी। सूर्य नहीं निकलता था। पृथ्वी को गरमाये कौन? पाले ने उसे जकड़ लिया। चंद्रमा भी वनों-पर्वतों पर अपनी ज्योति नहीं फैलाता था।

कलेवल देश में बड़े बुरे दिन आ गये।

लोग ठंड और अंधेरे से परेशान रहने लगे।

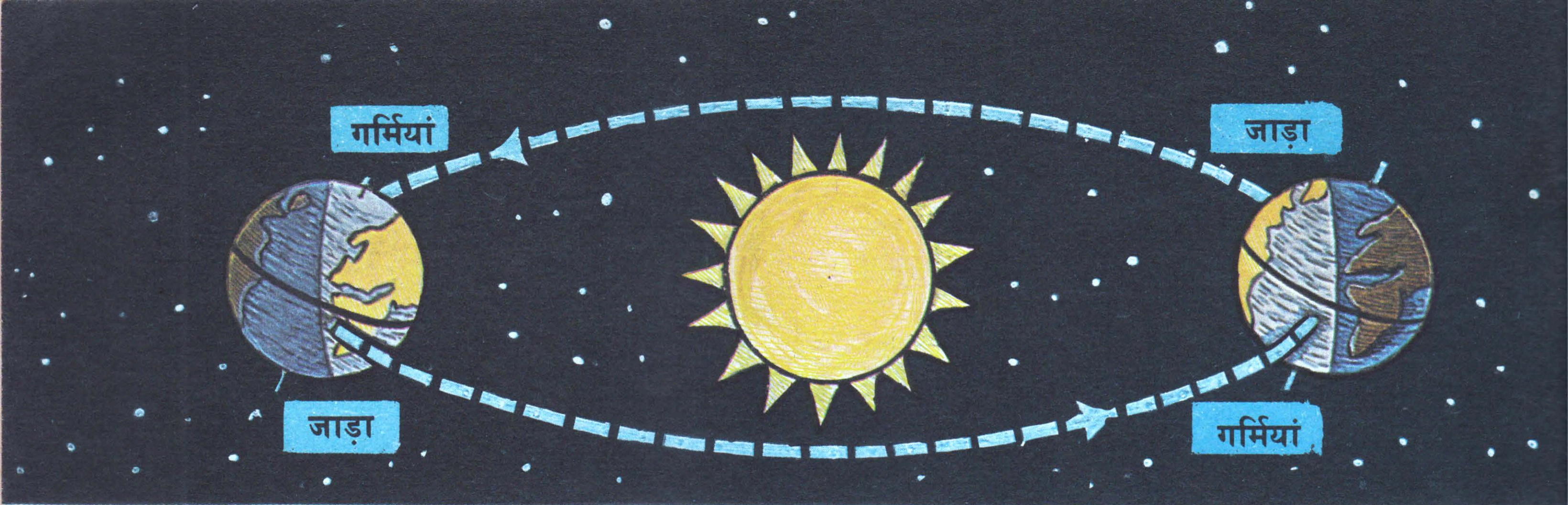
बड़ा मुश्किल था सूर्य के बिना जीना। बहुत ही मुश्किल!

बुढ़िया ने महाबलियों से बदला तो ले लिया लेकिन फिर भी वह मन ही मन उनसे डरती थी।

बाज़ का भेस धरकर वह यह देखने उड़ चली कि ठंड और अंधकार में महाबली क्या कर रहे हैं। मर-खप गये हैं या अभी डर के मारे थर-थर कांप रहे हैं?

वह वहां पहुंची और देखा क्या उसने? देखा उसने यह कि इलमरिनेन लौहार सली-सलामत है, अपने लौहारखाने में बैठा कुछ बना रहा है। "क्या कर रहे हो तुम?" वह पूछने लगी। इलमरिनेन बोला: "मैं इस दुष्ट बुढ़िया लोउहा के गले में बांधने के लिए ज़ंजीर बना रहा हूं, उसके गले में ज़ंजीर डालकर उसे चट्टान से बांध दूंगा।"

बुढ़िया समझ गयी कि वह महाबलियों का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। संसार में सबसे भयावह जो है – चिर अंधकार और ठंड – वह भी उन्हें नहीं मार सका। बुढ़िया उदास होकर पोहयोला को वापस लौट



गयी, अपना तहखाना खोलकर उसने सूरज और चंद्रमा को छोड़ दिया।

फिर से कलेवल देश में उजाला और गर्मी हो गयी।

अब जब सूरज जाड़ों में पहाड़ों के पीछे छिपता था तो लोग डरते नहीं थे। ठंड और अंधकार के देश पोहयोला की दुष्ट जादूगरनी पर उन्होंने विजय पा ली। यह विजय मनुष्य ने पायी, जो न अंधेरे से डरा, न ठंड से।

अच्छी है न कहानी?

आओ, अब हम यह देखें कि सूरज जाड़ों और गर्मियों में एक जैसा क्यों नहीं चलता। इसका असली कारण क्या है? पृथ्वी तो सदा एक ही तरह से घूमती है।

सारा कुसूर पृथ्वी की धुरी का है। बात यह है कि यह धुरी झुकी हुई है। इसलिए पृथ्वी चकफेरी • के झूले की भांति सीधी खड़ी हुई नहीं घूमती है, बल्कि एक ओर को ज़रा झुककर। और पृथ्वी सदा एक ही



दिशा में झुकी होती है। यही सारी बात है।

हमने जो चित्र बनाया है उसमें धुरी दायीं ओर को झुकी हुई है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और ऐसा होता है कि पृथ्वी का उत्तरी गोलार्ध कभी सूर्य की ओर झुका होता है, कभी उससे परे।

ज़रा देखो कि जब उत्तरी गोलार्ध सूर्य की ओर झुका होता है तब क्या होता है।

पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है। हम उस पर बैठे हैं। जब प्रकाश और छाया की सीमा पर पहुंचेंगे तो हम सूर्योदय देखेंगे। चित्र में इस स्थान पर हमने लिखा है: "सुबह"।

फिर हम अपनी चकफेरी पृथ्वी पर सारा दिन धूप में रहेंगे। दोपहर को सूर्य हमारे सिर के प्रायः ऐन ऊपर होगा।

और कुछ समय बीतने पर सूर्य अस्ताचल को जायेगा। चित्र में जहां "शाम" लिखा है, वहां पर जब हम पहुंचेंगे तब सूर्य क्षितिज के पीछे छिप जायेगा।

अब यह देखो कि रात कितनी छोटी होगी।

गर्मियों में हम धूप में कितना लंबा रास्ता तय करते हैं और कितना छोटा रास्ता छाया में।

दिन चूंकि इतना लंबा होता है और रात इतनी छोटी और चूंकि सूरज सिर के ऐन ऊपर चमकता है, इसीलिए गर्मी हो जाती है। ग्रीष्म ऋतु आती है।

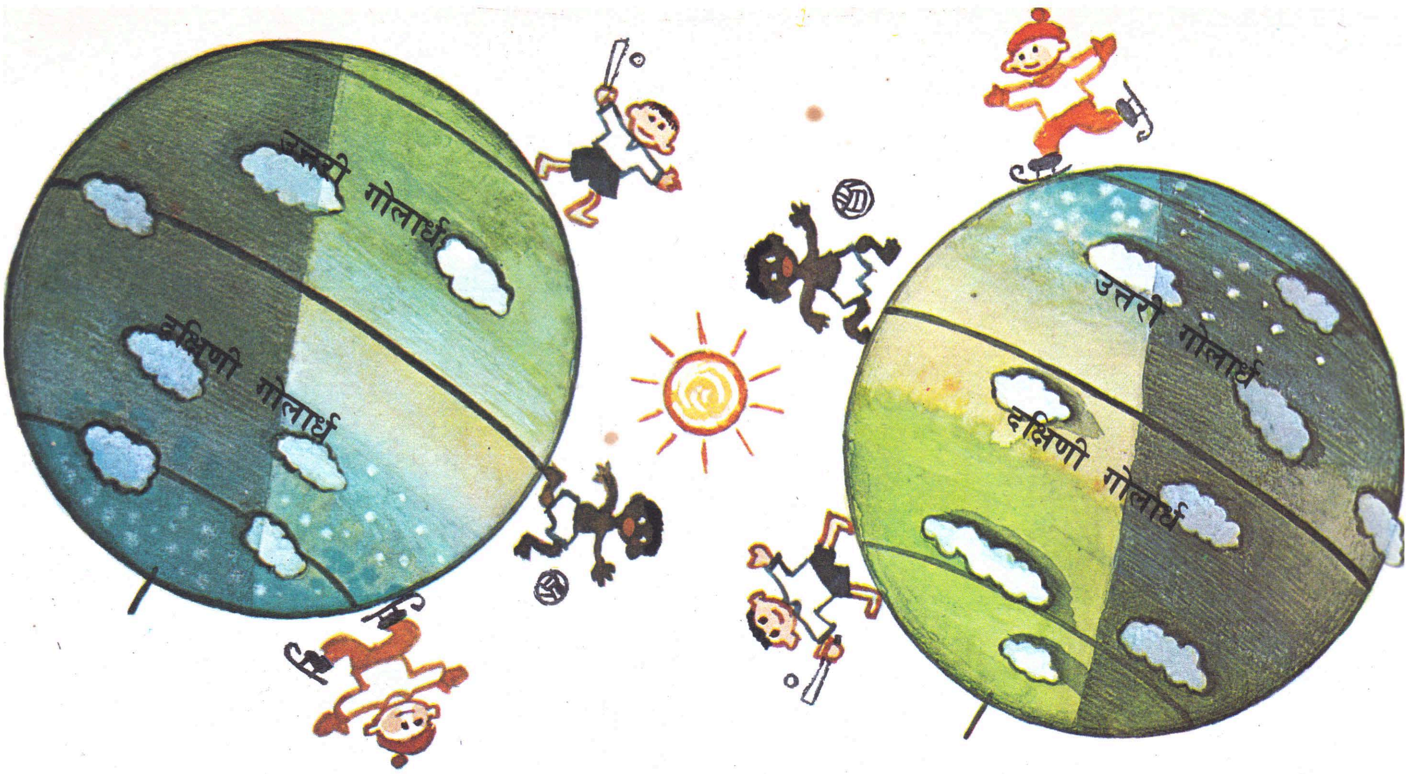
पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हुए जब उसके दूसरी ओर पहुंचेगी तब बात बिल्कुल दूसरी होगी। यहां उत्तरी गोलार्ध सूर्य की ओर नहीं उससे परे झुका होगा। पृथ्वी के अपनी धुरी पर हर चक्कर में हमें अधिक देर तक छाया में रहना पड़ेगा। पृथ्वी कुछ घंटों के लिए ही हमें धूप में ले जायेगी और फिर से देर तक छाया में रखेगी।

रात का हमारा पथ लंबा हो जाता है, दिन का छोटा। दिन में सूरज की किरणें भी सीधे ऊपर से नहीं पड़तीं, जैसा कि गर्मियों में होता है, बल्कि बगल से पड़ती हैं। किरणें धूमिल पड़ जाती हैं, वे पृथ्वी पर तिरछी फिसलती हैं और उसे बहुत कम गरम करती हैं।

ठंड हो जाती है। जाड़ा आ जाता है।

जो लोग भूमध्यरेखा के पास रहते हैं उन्हें कभी





भी ठंड नहीं सहनी पड़ती। वहां बारहों महीने सूरज आकाश में ऊंचा उठता है, उसकी किरणें सीधे ऊपर से पड़ती हैं।

इसीलिए भूमध्यरेखा के पास स्थित देशों में सदा बहुत गर्मी होती है। उन्हें "गरम देश" ही कहते हैं।

इन देशों के निवासी जानते ही नहीं कि ठंड किसे कहते हैं और हिम कैसा होता है।

भूमध्यरेखा से आगे दक्षिणी गोलार्ध पर फिर से जाड़ा और गर्मियां होते हैं।

लेकिन एक दिलचस्प बात है। जब उत्तरी गोलार्ध में गर्मियां होती हैं, तो दक्षिणी गोलार्ध में जाड़ा। और जब उत्तरी गोलार्ध में जाड़ा आता है तो दक्षिणी गोलार्ध में गर्मियां।

तुम, शायद, खुद ही समझ गये होगे कि ऐसा क्यों होता है। जब पृथ्वी का ऊपरी भाग सूरज की ओर झुका होता है, तो निचला भाग उससे परे हटा होता है। और जब ऊपरी भाग परे हटा होता है तो निचला भाग सूरज की सीधी किरणों से गर्मी पाता है।

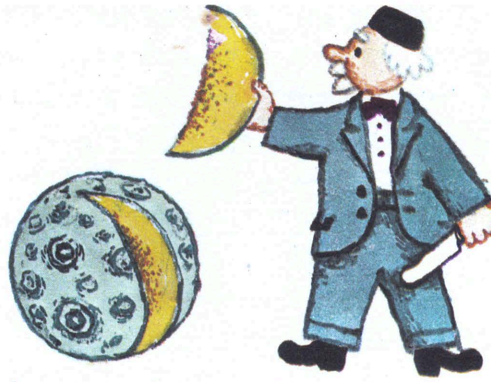
हम जानते हैं कि जनवरी का महीना हमारे यहां सबसे ठंडा महीना होता है। उधर आस्ट्रेलिया में यह गर्मियों का महीना होता है। मई में वहां पतझड़ होता है, जुलाई में कड़ाके की ठंड पड़ती है, सितंबर में कोंपलें फूटती हैं, हरियाली छाती है, वसंत ऋतु का आगमन होता है।

देखा तुमने, पृथ्वी की धुरी झुकी होने के कारण कितनी मज़ेदार बातें होती हैं।

यदि पृथ्वी चकफेरी की भांति सीधी धुरी पर घूमती तो बात कुछ और ही होती।

सारा साल सूरज से हमें एक समान ताप मिलता। तब ऋतुएं भी न होतीं। ध्रुवों के पास बारहों महीने जाड़ा होता और भूमध्यरेखा के पास बारहों महीने गर्मी। इनके बीच के इलाकों में सदा पानी बरसता रहता। ऐसे में न जाड़े का मज़ा आता, न गर्मियों का।

कितना अच्छा है कि पृथ्वी की धुरी झुकी हुई है!



चंद्रमा फांक जैसा क्यों होता है ?

सभी खगोलीय पिंड विशाल गोले हैं। इसीलिए सूरज हमें सदा गोल दीखता है।

लेकिन चंद्रमा तो कभी-कभार ही गोल होता है, अक्सर तो वह आधा-अधूरा, फांक जैसा ही नज़र आता है।

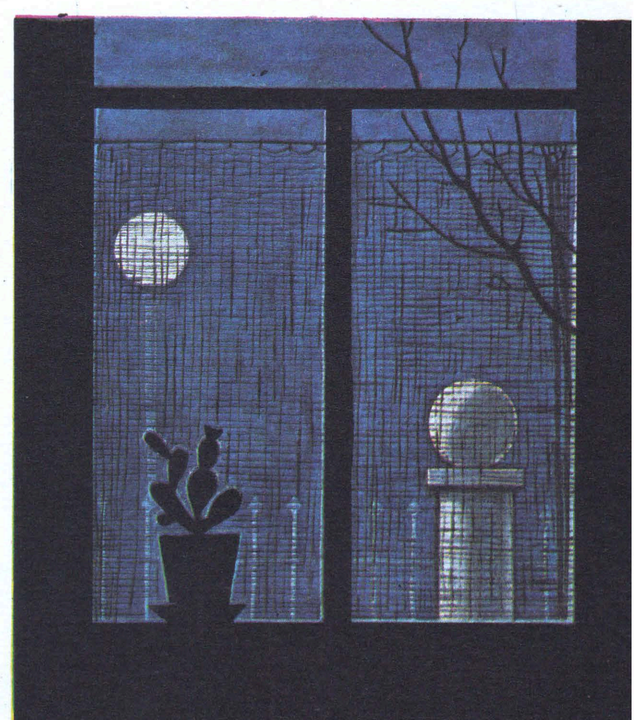
सड़क की बत्ती के दूधिया लट्टू को देखो। इसे तुम चाहे कहीं से भी देखो यह एक समान गोल होगा। क्योंकि वह बत्ती है। वह सूरज की तरह स्वयं प्रकाश देती है।

उधर फाटक के खंभे पर पत्थर का गोला बना हुआ है, वह अपने आप नहीं चमकता। उस पर सड़क की बत्ती की रोशनी पड़ रही है। यह रोशनी भी उस पर एक तरफ़ ही पड़ती है।

अब इस पत्थर के गोले को कमरे में से, प्रकाशित पर्दे के पीछे से देखो। गोले का अंधेरा पहलू अब बिल्कुल नहीं दीख पड़ता। उसका उजला पक्ष ही दिखायी देता है – संतरे की फांक जैसा गोले का एक हिस्सा ही।

ऐसा ही चंद्रमा के साथ होता है। वह भी तो





पत्थर का गोला है। सूरज वह बत्ती है, जो उसे एक ओर से प्रकाशित करती है। नीले आकाश से होकर सूरज का चकाचौंध करता प्रकाश और चंद्रमा के अधूरे भाग पर पड़ता सूर्य का प्रकाश ही हमारी आंखों तक पहुंचता है। अंधकारमय भाग धुंधली हवा के पार नहीं दिखायी देता है। तारे भी इसके पार नहीं दीख पड़ते हैं। हालांकि दिन में भी सभी तारे अपनी जगह बने रहते हैं। उनका कोई बुझाता तो है नहीं।

रात को हवा छाया में होती है। धूप उसे चमकाती नहीं। रात को हवा पारदर्शी हो जाती है, वैसे ही जैसे कमरे में बत्ती बुझी होने पर झीना पर्दा। तब उसके आर-पार सब कुछ दिखायी देता है। तारे हमें दिखने लगते हैं।

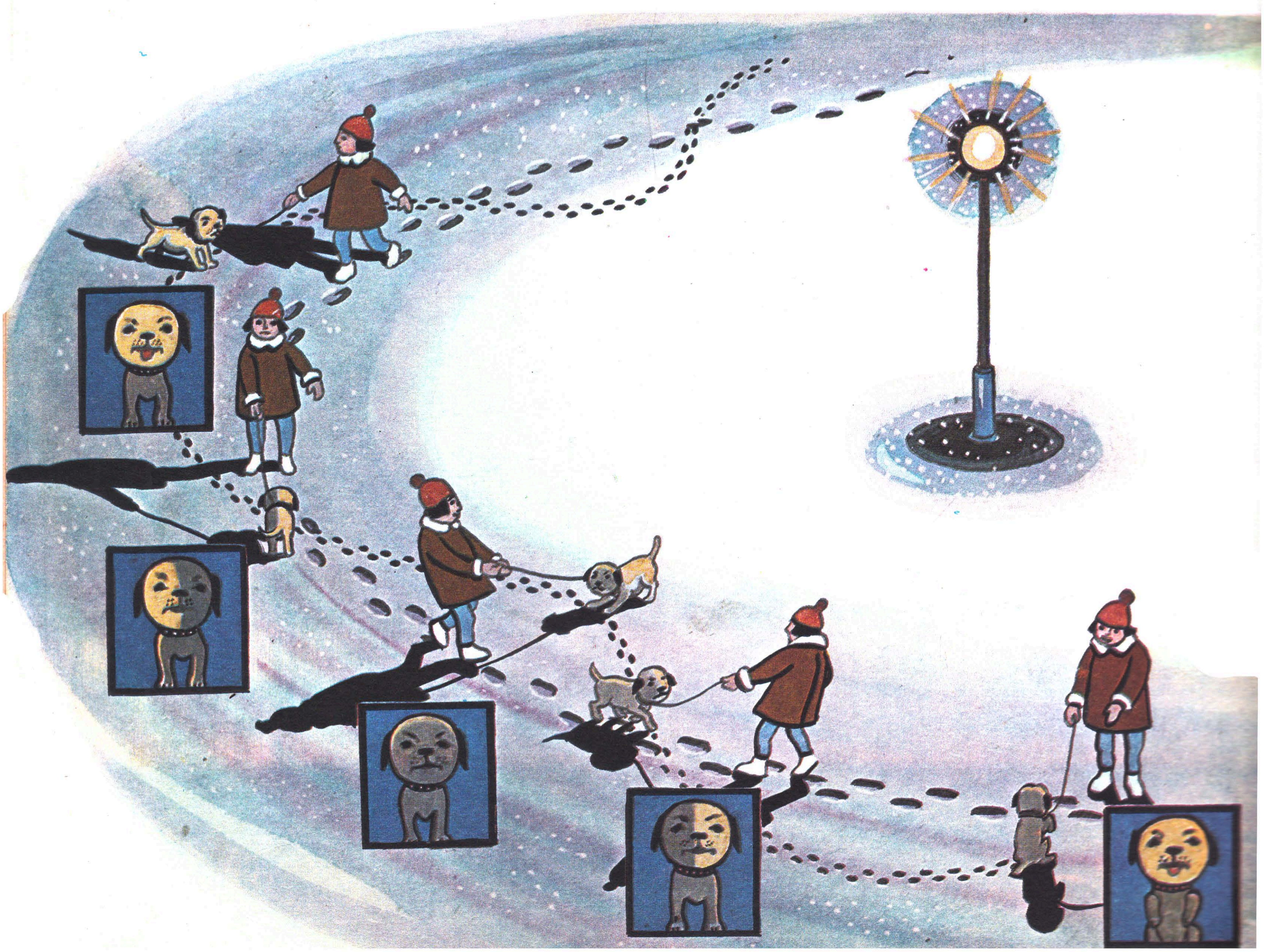
कभी-कभी रात को हवा खास तौर पर साफ़ और पारदर्शी होती है – न ज़रा-सी धूल, न कोई बादल। तब सबसे क्षीण, सबसे छोटे तारे भी देखे जा सकते हैं। ऐसी रातों में चंद्रमा का अंधेरा भाग भी नज़र आता है।

चंद्रमा कभी पूरा, कभी आधी रोटी जैसा तो कभी फांक जैसा क्यों होता है?

क्योंकि वह पृथ्वी की परिक्रमा करता है।

जैसे कि यहां दिये गये चित्र में रस्सी से बंधा पिल्ला।

कभी पिल्ले की थूथनी पर अच्छी तरह रोशनी पड़ती है, कभी आधे चेहरे पर। फिर जब पिल्ला उस ओर चला जायेगा, जहां बत्ती है और रोशनी की ओर उसकी पीठ होगी तो उसकी सारी थूथनी अंधेरे में होगी। उसे बिल्कुल भी नहीं देखा जा सकता। बस, एक पतली-सी किनारी ही दीख पड़ती है।





चंद्रमा पर क्या है?

अब तो हम यह जानते हैं कि चंद्रमा पत्थर का विशाल गोला है। पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ वह अंतरिक्ष में तिरता रहता है।

लेकिन पहले जब दूरबीनें और टेलीस्कोप नहीं थे तब लोग क्या सोचते थे? वे चंद्रमा को निहारते थे, उस पर नज़रें गड़ाये उसे अच्छी तरह देख पाने की कोशिश करते थे और उनके मन में तरह-तरह के विचार उठते रहते थे। वे यह पता लगाने की चेष्टा करते थे कि चंद्रमा है क्या।

चंद्रमा की रुपहली-नीली ज्योत्सना में सब कुछ रहस्यमय प्रतीत होता है। पेड़-पौधों में कोई हलचल नहीं, पानी पर झिलमिलाती पगडंडी बन गयी है। पूर्ण नीरवता है!

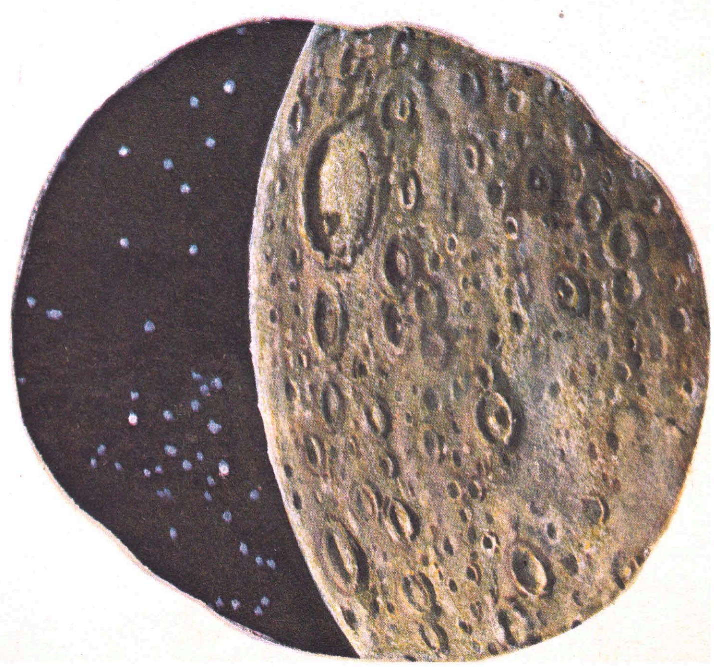
चंद्रमा रात्रि-लोक का राजा है।

उसके बारे में लोगों ने बहुत-सी कहानियां बनायी हैं।

सोवियत संघ के दक्षिण में रहनेवाले किर्गिज़ लोग उसके बारे में यह कहानी सुनाते हैं।

बहुत पहले चंद्र नाम का एक अमीर खान था। उसके एक सुंदरी बेटी थी चंदा।

देश-विदेश के कई बांके वीर सुंदरी चंदा से विवाह करने के इच्छुक थे। लेकिन खान की बेटी किसी की कुछ नहीं सुनना चाहती थी। क्योंकि उसे एक गरीब नाविक से प्रेम था। वह भी उससे प्रेम करता था।





लेकिन अमीर खान अपनी बेटी का विवाह किसी गरीब नाविक से कैसे करता, जिसे कोई नहीं जानता, जिसका कोई यश नहीं, नाम नहीं।

तब नौजवान ने फ़ैसला किया कि वह परदेस जायेगा, वहां कोई पराक्रम करेगा, नाम कमाकर, यशस्वी वीर बनकर लौटेगा। तब खान अपनी बेटी का विवाह उससे करने से इंकार करने का साहस नहीं कर पायेगा।

नाविक ने अपनी प्रिया से विदा ली और समुद्र पार चला गया। सुंदरी चंदा उसकी राह देखने लगी।

बहुत समय बीत गया, लेकिन उसका मनमीत नहीं लौटा। चंदा चिंतित रहने लगी। रात को वह सागर तट पर जाकर खड़ी हो जाती, देखती रहती कि उसका मीत तो नहीं आ रहा।

लेकिन उसका कुछ पता ही नहीं था। कौन जाने उसे कुछ हो गया हो? चंदा रोती, उदास रहती।

बूढ़ा खान चल बसा। उसकी बेटी आलीशान महल में अकेली रह गयी।

तब से वह रोज़ रात को अपना वधुओं का परिधान पहनती है, जादुई नाव में बैठती है और अपनी सखियों-तारिकाओं के साथ अपने मीत को खोजने आकाश पर निकलती है। उदासी में डूबी दूर-दूर देखती रहती है।

इसीलिए चंद्रमा इतना पीला और उदास है।

एक दूसरी प्राचीन कहानी में चंद्रमा को जादुई रजत द्वीप बताया गया है, जो नीले आकाशीय महासागर में तिरता है। इस द्वीप पर विचित्र जीव रहते हैं, जो लोगों जैसे नहीं हैं।

वैसे किस्से-कहानियों में चंद्रमा जीता-जागता प्राणी ही अधिक होता है। वाकई चंद्रमा को देखो तो लगता है कि कोई मुस्कराता चेहरा तुम्हारी ओर देख रहा है। चंद्रमा के धब्बे मुंह, नाक, आंखों जैसे ही लगते हैं न।

किस्से-कहानियों में चंद्रमा सदा उदार, भला और कभी-कभी उदासी भरा होता है।

टेलीस्कोप से लोगों ने चंद्रमा का अच्छी तरह प्रेक्षण कर लिया, लेकिन वह उसे अधिक बारीकी से जानना चाहते थे।

सो लोग राकेटों की मदद से स्वचालित यंत्र चंद्रमा पर भेजने लगे। ये यंत्र अपनी कांच की आंखों से अपने इर्द-गिर्द सब कुछ देखते थे और दूरदर्शन की मदद से हमें दिखाते थे।

शुरू में ये यंत्र अचल थे। जहां चंद्रमा पर उतरते वहीं बैठे रहते। बस अपना "सिर" ही इधर-उधर घुमाते। फिर वैज्ञानिक और इंजीनियर अधिक "अक्लमंद" यंत्र चंद्रमा पर भेजने लगे। सोवियत संघ द्वारा भेजे गये यंत्रों में कुछ ऐसे यंत्र थे जो चंद्रमा पर उतरकर अपना फ़ौलादी "हाथ" बाहर निकालते, उससे चंद्रमा की मिट्टी उठाते और अपने साथ लाये राकेट में उसे छिपा देते। यह राकेट चंद्रमा से उड़ता और पृथ्वी पर लौट आता। इस तरह वैज्ञानिकों को घर बैठे-बैठे ही "चंद्रमा का टुकड़ा" मिल जाता। दूसरे सोवियत स्वचालित यंत्रों पर मोटरें और पहिये लगे हुए थे। ऐसा यंत्र 'लूनाखोद' कहलाता था। 'लूनाखोद' अपने चारों ओर का स्थल देखता और दूरदर्शन द्वारा पृथ्वी पर लोगों को दिखाता कि उसे क्या नज़र आ रहा है। पृथ्वी से लोग रेडियो द्वारा उसका संचालन करते थे और वह उनके आदेश पर सीधे, दायें या बायें – जिधर वे कहते, उधर ही चलता था। वैज्ञानिक और इंजीनियर पृथ्वी पर आराम से कुर्सियों में बैठे होते और टेलीविज़न के पर्दे पर नज़र





रखते। उन्हें लगता कि वे स्वयं चंद्रमा पर चल रहे हैं। वे 'लूनाखोद' को यह आदेश भी दे सकते थे कि वह रुककर मिट्टी को "हाथ" से छुए, देखे कि वह भुरभुरी है या सख्त, यह पता लगाये कि वह किन तत्वों से बनी है। यह सब अत्यंत रोचक था, बहुत ही सुविधाजनक था और लोगों के लिए एकदम निरापद भी।

स्वचालित यंत्रों ने लोगों को चंद्रमा के बारे में बहुत-सी नयी और महत्वपूर्ण जानकारी दी। लेकिन अमरीकियों ने अपने अंतरिक्षनाविकों को ही वहां भेजने का निश्चय किया। उन्होंने अपने लिए बड़ा कठिन कार्यभार तय किया था। कई साल तक वे तैयारियां करते रहे। उन्होंने तीस-तीस मंज़िले मकान जितने ऊंचे लगभग बीस राकेट बनाये। इनके ऊपर विशाल अंतरिक्षयान 'अपोलो' लगाये। पृथ्वी के गिर्द कई उड़ानें भरीं। और फ़िर चंद्रमा की ओर उड़ चले।

१९६९ में पहले मनुष्यों ने चंद्रमा पर पांव रखा। यह थे अमरीकी अंतरिक्षनाविक नील आर्मस्ट्रांग और एडविन ओल्ड्रिन। चंद्रमा पर कुल बारह अमरीकी अंतरिक्षनाविक गये। इनमें अंतिम तो चंद्रमा पर छोटी-छोटी "मोटरगाड़ियों" पर भी घूमे थे।

अमरीकी अंतरिक्षनाविक अपने साथ चंद्रमा के बहुत से पत्थर लाये और फ़ोटो भी खींचकर लाये। सबसे बड़ी बात उन्होंने चंद्रमा का "आंखों देखा हाल" सुनाया। उनकी उड़ानों के बाद और सोवियत संघ के 'लूनाखोद' द्वारा वहां पर किये गये कामों के बाद अब हम चंद्रमा पर अपनी यात्रा की कल्पना कर सकते हैं। तो चलो, उड़ान भरें।

दो दिन, दो रात की उड़ान के बाद हम चंद्रमा पर पंहुच गये हैं।

हम चंद्रमा पर हैं! अंतरिक्ष पोशाक पहनकर हम राकेट से बाहर निकलते हैं। इसके बिना नहीं निकल सकते – चंद्रमा पर हवा जो नहीं है, सांस कैसे लेंगे। अंतरिक्ष पोशाक के अंदर हवा होती है।

चंद्रमा पृथ्वी से छोटा है और वह कम शक्ति से वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है। पृथ्वी की तुलना में हर वस्तु का भार यहां पहले से छठा अंश रह जाता है। अपने साथी को तुम एक हाथ से ही उठा सकते हो, लगता है जैसे वह "खिलौना" है।

हम यहां इतने हल्के हो गये हैं कि आसानी से बड़े-बड़े गड्ढे फांद जाते हैं, एक छलांग में ही उछलकर चट्टान पर चढ़ जाते हैं। लगता है कोई अदृश्य शक्ति है, जो हमें सारा समय सहारा दिये रहती है।

यहां हम गिरते भी वैसे नहीं हैं, जैसे कि पृथ्वी पर। धीरे-धीरे नीचे आते हैं, जैसे कि पानी में डुबकी लगा रहे हों।

नील आर्मस्ट्रांग ने बताया था कि यदि अचानक मुंह के बल गिर पड़ो तो चोट नहीं लगेगी। और दोनों हाथों से चंद्रमा की मिट्टी पर ज़रा-सा ज़ोर डालकर ही उठा जा सकता है।

उन्होंने यह भी बताया था कि यह हल्कापन कभी-कभी उनके लिए अड़चन भी बनता था।

हल्के आदमी के पांव मिट्टी से कम सटे होते हैं और वे ऐसे फिसलते हैं, जैसे पृथ्वी पर बर्फ़ पर। यदि तुम खड़े हो और चलना चाहते हो तो शुरू में पांव "फंसते" हैं। धीरे-धीरे छोटे-छोटे कदम भरते हुए चलना शुरू करना पड़ता है। फिर जब तुम चल रहे हो तो एकदम रुक नहीं सकते या तेज़ी से मुड़ नहीं सकते। पांव फिसलते हैं – तुम आगे निकल जाते हो। पहले से ही चाल धीमी करनी पड़ती है।

चंद्रमा में सदा पूर्ण निस्तब्धता होती है। तुम कितना भी क्यों न चिल्लाओ, तुम्हारी आवाज़ कोई नहीं सुन पायेगा। पृथ्वी पर ध्वनि वायु के माध्यम से फैलती है। चंद्रमा पर वायु है ही नहीं। तुम्हारे सिर के ऊपर कोई घंटा बजाये तो भी तुम्हें कुछ नहीं सुनायी देगा, मानो घंटा न बजा हो, रज़ाई पर डंडा मारा हो। यहां रेडियो की मदद से ही या इशारों से ही एक दूसरे से बातचीत की जा सकती है।

आओ, अब यह देखें कि चारों ओर क्या है।

कहीं कोई पेड़ नहीं, कोई घास-पात नहीं। एकदम उजाड़ है। सतह ऊबड़-खाबड़ है, जैसे किसी ने चारों ओर ढेले-पत्थर फेंककर बस ज़रा सपाट कर दिया हो और ऊपर से धूसर-मटमैली धूल की परत बिछा दी हो। धूल में से पत्थर निकले हुए हैं। पैरों तले देखकर न चलो तो ठोकर लग जायेगी।

चंद्रमा पर गड्ढे ज़्यादातर गोल ही हैं, जिनके सिरे ज़रा ऊपर को उठे हुए हैं। ये लड़ाई में गोलों के फटने से बने गड्ढों जैसे ही लगते हैं। बड़े गड्ढों को क्रेटर कहते हैं, ये तो टीलों की गोल शृंखलाओं से घिरे विशाल खड्ड ही होते हैं।

बड़े क्रेटरों का तला गोल और सपाट होता है, इसलिए वे विशाल स्टेडियमों जैसे लगते हैं।

चंद्रमा पर आकाश पृथ्वी के आकाश से बिल्कुल भिन्न है। वह आसमानी नहीं, काला है। रात हो या दिन आकाश एक-सा काला रहता है। हां, रात को उस पर तारे निकले होते हैं। वैसे तो दिन को भी तारे देखे जा सकते हैं, लेकिन तब जबकि सूर्य से ओट कर लो और धूप से भरे मैदान से भी।

सूर्य के अलावा काले आकाश में पृथ्वी भी है। वह बहुत बड़ी है, नीले रंग की। लगता है, उस पर सफ़ेद-सा कुछ पुता हुआ है। यह पृथ्वी के बादल हैं।

एक दिलचस्प बात यह है कि आकाश पर सूर्य तो गतिमान है, किंतु पृथ्वी अचल है। ऐसा इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि चंद्रमा का सदा एक ही पहलू पृथ्वी की ओर रहता है, जैसे हमारे चित्र में रस्सी से बंधा पिल्ला लड़की के गिर्द घूमता हुआ था। याद है न?

सूर्य का प्रकाश पृथ्वी के एक ओर ही पड़ता है। इसलिए पृथ्वी हंसिये जैसी दिखायी देती है। आकाश में सूर्य पृथ्वी के जितना पास आता है, उतना ही यह हंसिया पतला होता जाता है। जब सूरज पृथ्वी के पास से गुजरता है, तो वह रुपहले छल्ले जैसी नज़र आती है।

चंद्रमा के आकाश में सूरज बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। यहां दिन दो हफ़्ते का होता है।

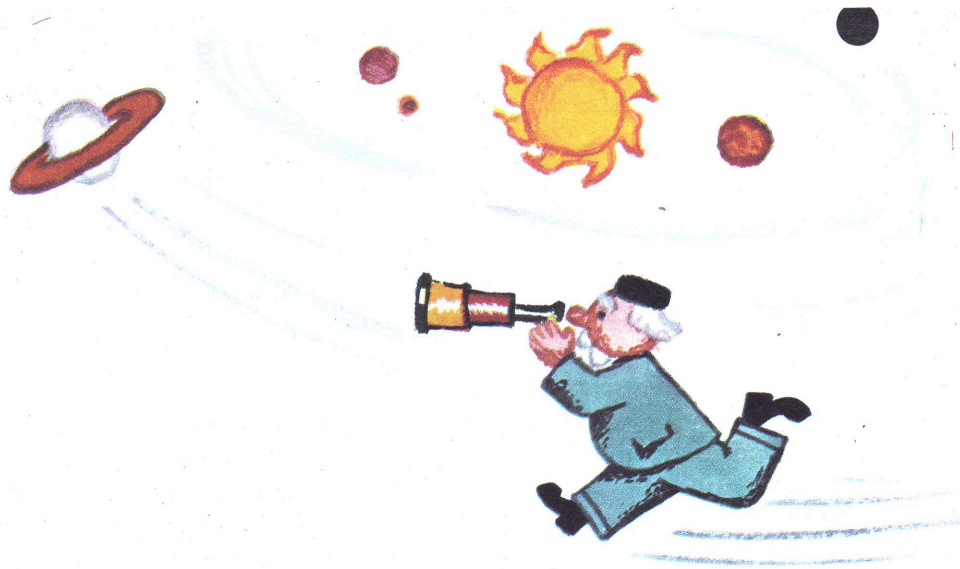
इतने लंबे दिन में धूप से चंद्रमा के पत्थर इतने तप जाते हैं कि ऊपर बर्तन रखकर खाना पकाया जा सकता है – आग जलाने की ज़रूरत ही नहीं। बड़ा अच्छा है न?

लेकिन जब रात आती है तो बस संभलके रहो। रात भी तो यहां दो हफ़्ते की होती है। चारों ओर सभी चट्टानें बड़ी जल्दी ठंडी पड़ जाती हैं। पाला तेज़ होता जाता है। कुछ दिनों में तापमान शून्य से १५०° सें० नीचे तक पहुंच जाता है!

सूरज तो अभी जल्दी नहीं निकलेगा!

ऐसे "मौसम" में तो घर पर आग के पास बैठना ही अच्छा है।

नहीं, चंद्रमा पर जीना आरामदेह नहीं है।



ग्रह क्या हैं ?

शाम हो रही है। सूरज क्षितिज पर उतर आया है। हल्का-सा धुंधलका हो गया है। लेकिन आकाश पर अभी उजाला है, नीला और गुलाबी है वह।

सहसा तुम देखते हो आकाश पर सूर्य से कुछ बायीं ओर तथा ऊपर को एक रुपहला तारा चमकने लगा है। इसकी चमक बढ़ती जाती है। दूसरे तारे अभी नहीं निकले हैं। निकलने का अभी समय ही कहां हुआ है? अभी तो उजाला है। बस एक यही तारा बत्ती जैसा जल रहा है, टिमटिमा भी नहीं रहा।



जैसे ही संध्या का झुटपुटा होता है, यह तारा चमकने लगता है। धीरे-धीरे वह नीचे आता जाता है, जैसे कि क्षितिज के पार छिप गये सूर्य से पीछे छूट जाने का इसे डर हो। जब अंधेरा घिर आयेगा और सारे आकाश पर हज़ारों तारे छिटकेंगे तो यह सलोना तारा "पृथ्वी के छोर के पीछे" छिप जायेगा।

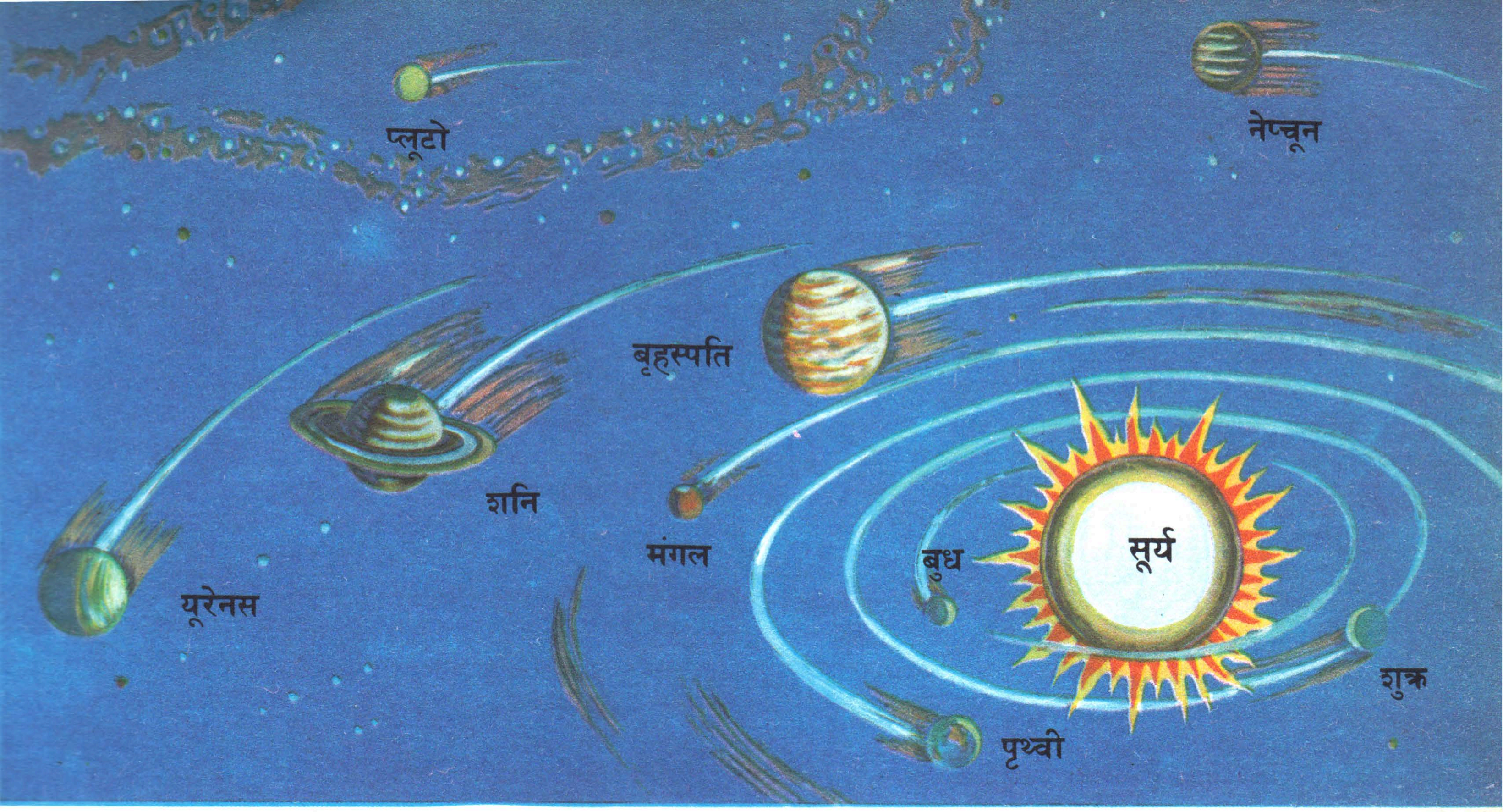
दूसरे दिन शाम को फिर यह चमकेगा।

इस तरह एक-दो महीने बीतेंगे। फिर यह तारा इतनी अच्छी तरह नहीं दिखायी देगा और धीरे-धीरे बिल्कुल ही ओझल हो जायेगा। कुछ समय बाद यह फिर से सुबह के समय प्रभातवेला की गुलाबी किरणों में चमकेगा। यह आकाश पर ऊपर उठेगा, जैसे कि सूर्य को रास्ता दिखा रहा हो। सूर्य शीघ्र ही निकलेंगा। सभी तारे बुझ चुकेंगे, अकेला यही चमकता रहेगा। जब सूरज चढ़ेगा तभी यह अंततः बुझेगा।

कौन है यह रुपहला सलोना? यह शेष सभी तारों से अधिक चमकीला क्यों है? यह कभी सूर्य के आगे और कभी उसके पीछे क्यों चलता है?

हज़ारों वर्षों से लोग इसे निहार रहे हैं, कभी इसे सांझ का तारा कहते हैं और कभी भोर का तारा।

भारत में इसका नाम शुक्र रखा गया। प्राचीन रोम में सौंदर्य की देवी के नाम पर इसे वीनस कहा गया।



रोमवासियों की कल्पना में यह एक अनुपम सुंदरी थी, जो श्वेत अश्वों से जुते चांदी के रथ में सवार होकर आकाश पर भ्रमण करती थी।

वास्तव में शुक्र क्या है?

शुक्र तारा नहीं, शुक्र एक ग्रह है।

सभी तारे नक्षत्रों में सदा अपने स्थान पर रहते हैं, लेकिन कुछ तारे ऐसे हैं जो मंथर गति से एक नक्षत्र से दूसरे की ओर भ्रमण करते रहते हैं। यदि तुम आस-पास के तारों को देखकर इनका स्थान याद कर लो और फिर कुछ दिनों बाद इन्हें ढूंढो, तो तुरंत ही देखोगे कि ये अपने उस स्थान से हट चुके हैं।

ऐसे "भ्रमणशील तारे" – ग्रह – लोग बिना किसी दूरबीन के पांच देख पाये थे। दूरबीन, टेलीस्कोप में ये अधिक दिखायी देते हैं।

आओ, हम इनका परिचय पायें।

इसके लिए पहले हम अंतरिक्ष में दूर उड़ जायेंगे।

तो कल्पना करो कि विशाल राकेट पर बैठकर हम सूर्य से बहुत दूर उड़ गये हैं। इतनी दूर कि वहां से वह एक उज्ज्वल तारा ही लगता है।

हम देखते हैं कि यह तारा इससे भी दूर के तारों की पृष्ठभूमि में अंतरिक्ष में गतिमान है।

अब हम सूर्य को अधिक गौर से देखते हैं। इसके निकट और भी कुछ छोटे-छोटे तारे हैं। वे सूर्य को घेरे हुए हैं और उसके साथ-साथ चलते हैं।

आओ, टेलीस्कोप देखें। पता चलता है कि ऐसा हर तारा चंद्रमा की भांति एक "फांक" जैसा दीख पड़ता है। क्योंकि ये सभी तारों की भांति अग्नि-पिंड नहीं हैं, बल्कि अंधेरे, ठोस गोले हैं, जो सूर्य के प्रकाश से चमकते हैं।

इनमें कुछ सूर्य के अधिक निकट हैं, कुछ दूर हैं। हमारी पृथ्वी भी इन में है।

ग्रह अपने आप नहीं चमकते। वे केवल इसलिए चमकते हैं क्योंकि सूर्य चमकता है। वे चंद्रमा के जैसे हैं।

सूर्य की ज्योति न रहे तो सभी ग्रह भी तुरंत बुझ जायेंगे।

आओ, अब यह देखें कि ग्रह कैसे चलते हैं। वे सभी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। यहां, इतनी दूर से लगता है कि वे बहुत ही धीरे चल रहे हैं; ऐसा लगता है कि वे खड़े ही हैं। हमने यह चित्र बनाया है कि हर ग्रह साल भर में कितना रास्ता तय करता है।



"फुर्तीला" बुध साल भर में सूर्य के गिर्द चार चक्कर लगा लेता है। शुक्र अधिक "धीर-गंभीर" है। वह केवल दो चक्कर लगाता है। पृथ्वी एक परिक्रमा करती है। "आलसी" मंगल केवल आधा चक्कर ही लगा पाया है, जबकि दूसरे ग्रह उससे भी कम।

कोई भी ग्रह कभी दूसरे से नहीं टकरायेगा। अंतरिक्ष में हर किसी का अपना पथ है, जिसे कक्षा कहते हैं।

एक भी ग्रह कभी सूर्य को छोड़कर नहीं जायेगा। वे सदा-सदा के लिए सूर्य से बंधे हुए हैं। वे सब एक परिवार के सदस्य हैं। इस परिवार में आदर्श व्यवस्था है। परिवार का मुखिया सूर्य है, इसलिए इस परिवार को सौर मंडल कहते हैं।

आओ, अब ग्रहों के बीच लौट चलें। अपनी पृथ्वी पर उतरकर दूसरे ग्रहों को देखें। कुछ ग्रह पृथ्वी के अपेक्षाकृत निकट हैं, कुछ उनसे अधिक दूर। कुछ उसी ओर हैं जिधर सूर्य है, शेष विपरीत दिशा में।



लेकिन सभी बहुत दूर हैं। इसीलिए कोई भी ग्रह हमें आकाश में चंद्रमा जैसा गोल नहीं दीखता। सभी चमकीले बिंदुओं जैसे नज़र आते हैं। इसीलिए इन्हें गलती से तारे समझा जा सकता है।

पृथ्वी के अपेक्षाकृत निकट स्थित ग्रह – बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि ही अधिक अच्छी तरह नज़र आते हैं।

अच्छे बाइनोकुलर में शुक्र ग्रह चंद्रमा की भांति छोटे-से हंसिये जैसा लगता है। तब तुरंत ही यह आभास होता है कि यह सचमुच का तारा नहीं है बल्कि अंधेरा गोला है, जिस पर एक ओर से सूर्य का प्रकाश पड़ रहा है।

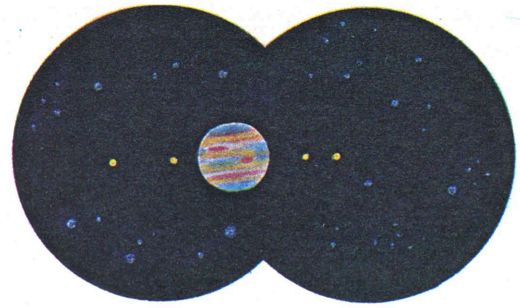
बुध ग्रह को देख पाना अधिक कठिन है। वह सूर्य के बहुत पास है। सूर्य का तेज़ प्रकाश उसे देख पाने में बाधक होता है। कभी-कभार ही जब सूरज डूब जाता है, तो सांझ की गेरुई लाली में थोड़ी देर के लिए छोटे-से तारे – बुध को देखा जा सकता है। वह सूर्य से पीछे छूट जाने से डरता है। कभी-कभी बुध भी शुक्र की ही भांति सुबह नज़र आता है। वह क्षितिज के पीछे से उसी स्थान पर निकलता है, जहां शीघ्र ही सूर्योदय होगा। थोड़ा ऊपर उठता है और आधे घंटे में ही प्रभात की किरणों में विलीन हो जाता है।

बुध में "गांभीर्य" कम है। सभी ग्रहों में वह सबसे तेज़, सबसे फुर्तीला है – कभी यहां होता है, कभी वहां ; कभी नज़र आता है कभी नहीं।

प्राचीन रोम में बुध का नाम मरकरी रखा गया। रोमवासी कहते थे कि जिसे कहीं जल्दी-जल्दी पहुंचना हो, वह मरकरी से कुछ सीखे। इसलिए सभी यात्री, सभी व्यापारी मरकरी को अपना गुरु, अपना देवता मानते थे। व्यापारियों को तो सदा अपना माल पहुंचाने की जल्दी रहती थी। जल्दी पहुंचा दोगे तो जल्दी बेच दोगे, जल्दी पैसे मिलेंगे। सो प्राचीन रोम में व्यापारी भी मरकरी को अपना इष्ट देव मानने लगे।

मंगल के रंग से इसे तुरंत ही पहचाना जा सकता है। सफ़ेद-नीले तारों के बीच मंगल चमकीला नारंगी लगता है। मंगल ग्रह का रंग आग की लपटों जैसा है। इस लाल ग्रह को देखते हुए लोगों को अनचाहे ही यह याद आता था कि कैसे युद्ध के दिनों में उनके घर जलते हैं।

लोग मंगल ग्रह से डरते थे। वे यह सोचते थे कि लाल तारा आकाश पर निकला है तो इसका अर्थ है लड़ाई होगी, लड़ाई के साथ दूसरी विपदाएं भी आयेंगी।



प्राचीन रोम के सेनापति मंगल को, जिसे वे मार्स कहते थे, अपना संरक्षक मानते थे और उससे यह आस लगाते थे कि वह शत्रु पर विजय पाने में उनकी सहायता करेगा।

मंगल हर साल नहीं दिखायी देता। सूर्य की परिक्रमा की उसकी गति पृथ्वी से आधी ही है। इसलिए प्रायः ऐसा होता है कि पृथ्वी सूर्य के एक ओर होती है तथा मंगल दूसरी ओर।

ऐसा होने पर उसे नहीं देखा जा सकता। सूर्य की किरणें चकाचौंध करती हैं। क्या दिन में नीले आकाश पर सूर्य के पास कोई तारा, चाहे वह कितना ही उज्ज्वल क्यों न हो, नज़र आ सकता है? बिल्कुल नहीं। हां, मंगल और पृथ्वी जब सूर्य के एक ही ओर होते हैं तो मंगल रात को अच्छी तरह दीख पड़ता है। हर पंद्रह-सत्तरह वर्ष बाद मंगल पृथ्वी के बहुत निकट आ जाता है, तब वह ख़ूब बड़ा और चमकीला लगता है।

मंगल केवल रात को नज़र आता है। उसे आकाश के उस भाग में ढूंढना चाहिए जहां से सूर्य दिन में गुज़रता है।

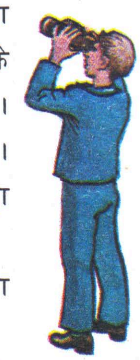
आकाश के उसी ओर रात को बृहस्पति भी देखा जा सकता है। वह अत्यंत उज्ज्वल श्वेत तारा है। सभी सचमुच के तारों से वह इस बात में भिन्न है कि सभी ग्रहों की भांति वह टिमटिमाता नहीं है, बल्कि बत्ती की तरह एकसार रोशनी देता है।

अच्छी दूरबीन से बृहस्पति को देखना बड़ा दिलचस्प होता है। तब उसके दोनों ओर एक कतार में फैले चार बहुत ही छोटे-छोटे तारे दीख पड़ते हैं। इनकी स्थिति याद कर लो और फिर अगले दिन, या उसी दिन कुछ घंटे बाद इन्हें देखो। तुम देखोगे कि इन तारों ने अपना स्थान बदल लिया है। एक तारा बृहस्पति के बायीं ओर था, अब वह दायीं ओर है, दूसरा पास था, अब दूर हो गया है। ये बृहस्पति के उपग्रह हैं, उसके चांद हैं। ये उसकी परिक्रमा करते हैं। हर बार जब तुम बृहस्पति को देखोगे तुम इन्हें नये स्थान पर पाओगे।

बृहस्पति के सबसे पास जो उपग्रह है वही सबसे तेज़ चलता है।

अपने चांदों समेत बृहस्पति छोटे-से सौर मंडल जैसा लगता है। इसलिए दूरबीन से बृहस्पति को देखते हुए तुम ग्रहों के हमारे "परिवार" की, जिसके केंद्र में सूर्य स्थित है, अच्छी तरह कल्पना कर सकते हो।

शनि भी उज्ज्वल सफ़ेद तारा है, किंतु उसकी कांति बृहस्पति से कुछ क्षीण है। यह सबसे सुंदर ग्रह है। ऐसा क्यों है, यह तुम ज़रा आगे चलकर देखोगे।



यदि सभी ग्रहों को जमा करके एक फुटे पर रखा जा सकता तो हम देखते कि वे सभी विभिन्न आकार के हैं। कुछ ग्रह पृथ्वी से छोटे हैं, कुछ उससे कहीं बड़े।

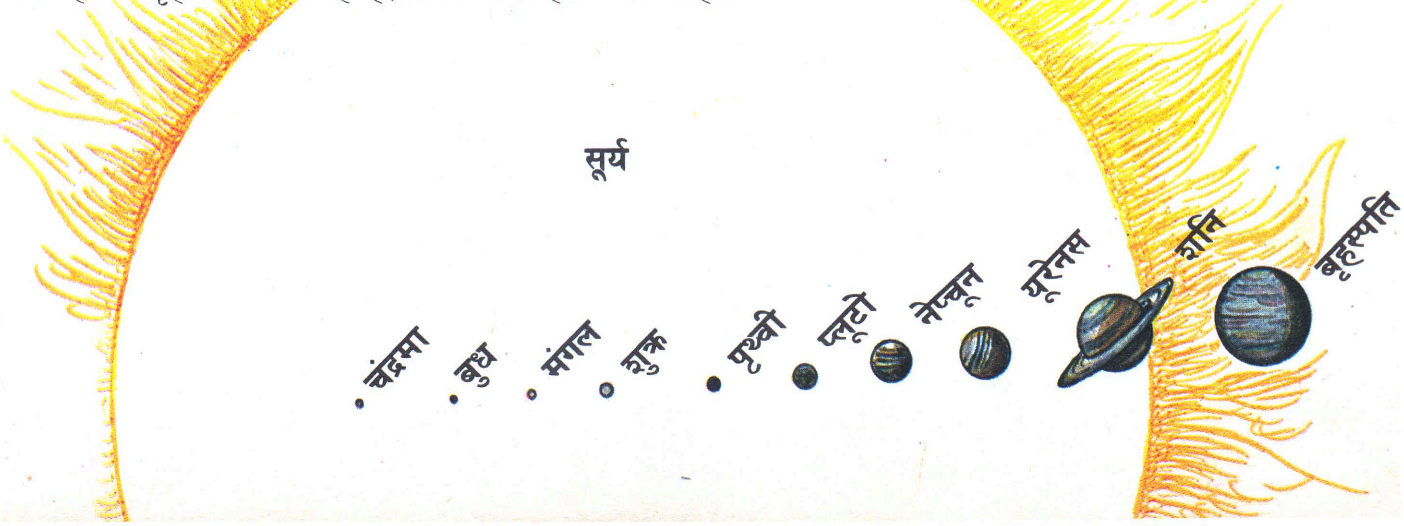
सबसे छोटा ग्रह है बुध और सबसे बड़ा बृहस्पति। लेकिन बृहस्पति भी सूर्य से कहीं छोटा है। सूर्य तो इतना बड़ा है कि हमारे चित्र पर आ भी नहीं पाया।

तुलना के लिए हमने पास ही चंद्रमा भी बनाया है। वह तो बुध से भी छोटा है।

सो, देखा तुमने – कैसे भिन्न-भिन्न हैं सभी ग्रह?

तुम क्या सोचते हो छोटे ग्रह पर रहें या बड़े पर – सब बराबर है?

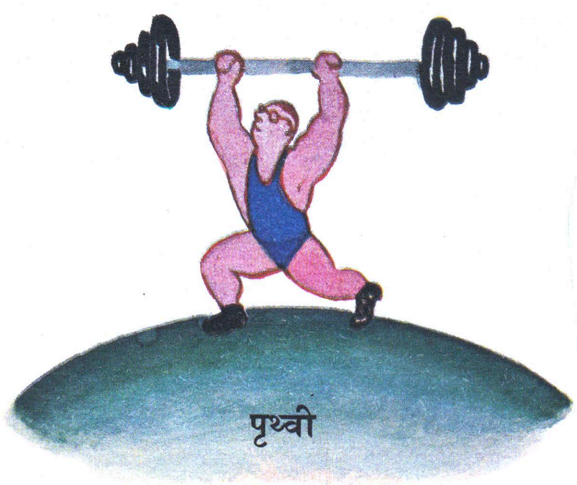
तुम क्या सोचते हो कि बड़े ग्रह पर रहना अधिक अच्छा है – वहां जगह अधिक है? या छोटे ग्रह पर रहना अधिक अच्छा है – जल्दी से "सारी दुनिया" का चक्कर लगा सकते हैं?





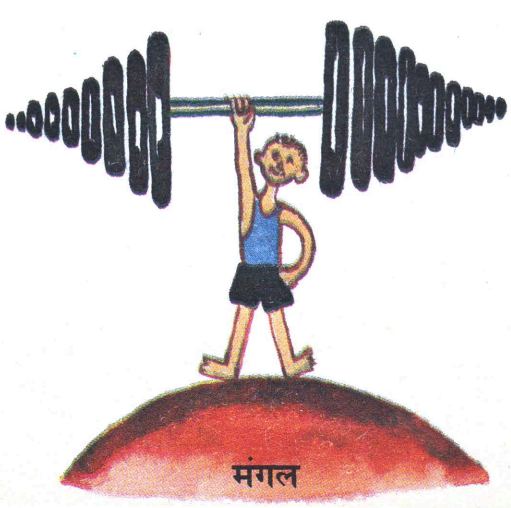
जल्दी में कोई फ़ैसला मत करो। सब कुछ इतना सरल नहीं है, जितना कि लगता है।

ग्रह जितना बड़ा होता है उतनी ही अधिक शक्ति से वह हर वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करता है।



इसलिए बड़े ग्रह पर किसी भी वस्तु को उठाना कठिन है। वह अधिक भारी लगती है।

उदाहरण के लिए, बृहस्पति की यह आकर्षण शक्ति, जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं, पृथ्वी से तीन गुनी अधिक है। बृहस्पति पर तो हमसे खड़ा ही न हुआ जा



सके। हमें ऐसा लगे कि हम मनों बोझ उठाये हुए हैं।

बेशक, ऐसे बोझ से घुटने मुड़ जायेंगे।

बृहस्पति का यह गुरुत्वाकर्षण सहन करने में अकेले हम ही असमर्थ हों – ऐसी बात नहीं है। ईंटों का मकान भी बृहस्पति पर ढह जायेगा, क्योंकि मकान की नींव में लगी ईंटें चूरा हो जायेंगी। बृहस्पति पर पांच मंज़िले मकान का भार पंद्रह मंज़िले मकान जितना होगा।

बृहस्पति पर रेल की पटरियां इंजन के बोझ तले झुक जायेंगी, हवाई जहाज़ के पंख टूट जायेंगे, बस के टायर फट जायेंगे।

सो, देखा तुमने बड़े ग्रहों पर रहना कठिन है। वहां "फ़ौलादी" आदमी होने चाहिए, "कंकरीट" के पेड़, "पत्थर" के जानवर।

अच्छा, यदि ऐसी बात है तो हो सकता है छोटे ग्रहों पर आनंद से रहा जा सकता हो। छोटे ग्रहों का गुरुत्वाकर्षण कम होता है। वहां सभी वस्तुएं इतनी हल्की होती हैं, जैसे कि वे गुब्बारे पर लटकी हों। वहां चलना आसान है, तेज़ दौड़ सकते हैं, खूब ऊंचे उछल सकते हैं। याद है चंद्रमा की बात?

लेकिन एकदम खुश मत होओ।

छोटे ग्रह पर अगर लोगों का भार कम होता है तो पत्थरों और दूसरी सभी वस्तुओं का भार भी कम होता है। छोटा ग्रह जल और वायु को भी अपनी ओर कम शक्ति से आकर्षित करता है।

तुम यह नहीं भूले न कि पृथ्वी पर हवा "पुती" हुई है। तुमने कभी यह सोचा है कि यह हवा पृथ्वी पर क्यों बनी रहती है? मान लो तुम फ़ुटबाल की गेंद पर धुआं "पोत" दो तो यह धुआं तुरंत ही इधर-उधर उड़ जायेगा। हवा भी तो धुएं जैसी है। वह भी उड़ जाना "चाहती" है। लेकिन वह पृथ्वी से उड़ क्यों नहीं जाती? सिर्फ़ इसलिए कि पृथ्वी अपने गुरुत्वाकर्षण बल से हवा को अपनी ओर खींचे रहती है। पृथ्वी का यह बल यदि कम हो जाये तो तुरंत ही हवा अंतरिक्ष में चारों दिशाओं में उड़ जायेगी, जैसे कि धुआं उड़ जाता है।

सो छोटे ग्रहों पर हवा की बड़ी समस्या है। छोटे ग्रहों में इतनी शक्ति नहीं कि वे हवा को अपने पास बनाये रखें। और हवा थोड़ी-थोड़ी करके उड़ जाती है।

यहां तक कि मंगल ग्रह पर भी पृथ्वी की अपेक्षा कहीं कम वायु रह गयी है। वहां यह अत्यंत विरल है।

बुध पर हवा प्रायः है ही नहीं। और चंद्रमा पर तो तुम जानते हो कि हवा बिल्कुल नहीं है। वह बहुत पहले ही अपनी सारी वायु खो चुका है।

छोटे ग्रहों पर हवा की ही समस्या नहीं है। वहां जल की भी समस्या है। जल तो वाष्प बनकर उड़ता रहता है, सूखता रहता है। विशेषतः जब सूर्य उसे गरम करता है। जल वाष्प, कोहरा, बादल बन जाता है। कोहरा और बादल तो वैसे ही हैं जैसे हवा। उन्हें अच्छी तरह पकड़कर न रखा जाये तो वे अंतरिक्ष में उड़ जायेंगे।

यही कारण है कि छोटे ग्रहों पर जल प्रायः नहीं है।

मंगल पर बहुत थोड़ा-सा जल ही बचा है। चंद्रमा बिल्कुल सूख चुका है। चंद्रमा पर एक बूंद भी जल नहीं है। यदि तुम चंद्रमा पर बाल्टी भर पानी ले जाकर चंद्रमा के पत्थरों पर उंडेल दो तो यह डबरा भी बड़ी जल्दी सूख जायेगा, वाष्प बन जायेगा और यह वाष्प अंतरिक्ष में उड़ जायेगी, उसमें विलुप्त हो जायेगी।

तो देखा तुमने कि किसी भी ग्रह पर रहना एक सी बात नहीं है। सबसे अच्छा पृथ्वी जैसे मंझोले ग्रहों पर रहना ही है। मंगल भी कुछ हद तक जीवन के लिए उपयुक्त हो सकता है।

हमने ताप की बात भी तो नहीं सोची। ग्रह तो एक घेरा बनाकर सूर्य की परिक्रमा नहीं करते न। सभी अपने-अपने घेरे में घूमते हैं, कुछ सूर्य के अधिक पास हैं, कुछ दूर।

सूर्य ग्रहों को अपनी किरणों से ताप देता है। सूर्य के ताप के बिना नहीं जिया जा सकता। हर भट्ठी की भांति सूर्य का ताप भी उसके पास अधिक लगता है और उससे दूर कम।

यदि पृथ्वी सूर्य के पास चली जाये तो समुद्रों में पानी खौलने लगेगा, पेड़ गर्मी के मारे जल उठेंगे।

दूसरी ओर यदि पृथ्वी सूर्य से दूर चली जाये तो इतनी ठंड हो जायेगी कि नदियों-समुद्रों में सारा जल जम जायेगा। सारी पृथ्वी पर बर्फ़ की मोटी तह जम जायेगी, जो गर्मियों में भी नहीं पिघलेगी।

इसका मतलब है कि सभी ग्रहों पर "मौसम" अलग-अलग है। किसी ग्रह पर बेहद गर्मी है, तो किसी पर विभीषण ठंड। उनके बीच में कहीं न बहुत गर्मी होगी, न बहुत ठंड।

हमारी पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जहां सर्दी-गर्मी दोनों "ठीक" ही हैं।

हमारे पड़ोसी ग्रह शुक्र पर भी भयानक गर्मी है। दूसरी ओर देखें तो मंगल पर ही जैसे-तैसे रहा जा सकता है। वैसे तो वहां पर भी ठंड ही है।

आओ, अब ग्रहों को पास से देखें।

टेलीस्कोप में ग्रह प्रायः ऐसे ही दीखते हैं जैसे कि आकाश पर चंद्रमा। उजला चक्र और उस पर काले धब्बे। ऐसा हर धब्बा उतना ही बड़ा है जितना कि पृथ्वी पर कोई देश। सबसे छोटा ग्रह बुध भी आखिर इतना बड़ा गोला है कि पैदल तो इसका चक्कर साल भर में भी नहीं लगाया जा सकता।

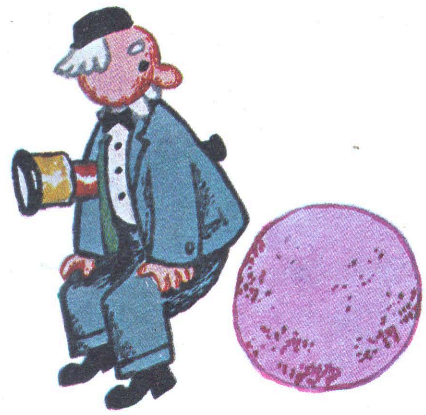
वैज्ञानिक टेलीस्कोप में देखते हैं और पाते हैं कि धब्बे का रूप बदल रहा है। इसका मतलब है कि यह बादल हैं, कि ग्रह वायु की परत से घिरा हुआ है और उसमें धूल, कोहरा, बादल उड़ते हैं।

यदि ग्रह पर ये धब्बे बरसों तक नहीं बदलते, जैसे हैं वैसे ही रहते हैं, तो यह बादल नहीं हैं। यह तो ग्रह की सतह पर ही कुछ है, या तो यह विशाल गहरा सागर है, या असीम घना वन, या काली चट्टानें।

वैज्ञानिक टेलीस्कोप में देखना जारी रखते हैं। यदि ये काले धब्बे सागर हैं, तो जल कभी-कभार सूर्य की किरणों में चमकना चाहिए। यदि धब्बा चमकता नहीं तो इसका अर्थ है कि यह शुष्क स्थल है, जैसे कि वन या पर्वत।

वैज्ञानिक टेलीस्कोप देखते ही नहीं। वे टेलीस्कोप की मदद से ग्रहों के फ़ोटो भी खींचते हैं। टेलीस्कोप पर भांति-भांति के जटिल उपकरण लगाते हैं, जिनकी मदद से वे ग्रहों का तापमान मापते हैं, यह पता लगाते हैं कि उनकी वायु किन तत्वों से बनी है, ग्रह की सतह पर क्या है – रेत, पत्थर या वनस्पतियां।

इसलिए वैज्ञानिकों को अब ग्रहों के बारे में बहुत कुछ पता है। सो हम ग्रहों की काल्पनिक यात्रा पर जा सकते हैं।

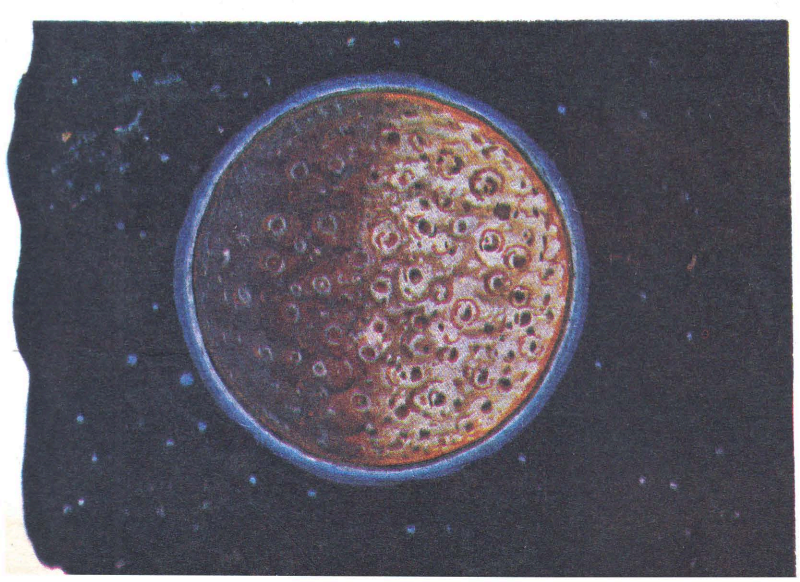


क्या बुध पर उतरा जा सकता है?

हां तो, हमारा अंतरिक्षयान बुध ग्रह के पास पहुंच रहा है।

ऐसा लगता है कि बुध ज़रा भी घूम नहीं रहा है। अपनी एक "बगल" ही सूर्य की ओर किये उसकी परिक्रमा कर रहा है। लेकिन ऐसा केवल प्रतीत ही होता है। ग्रह के धब्बों को ध्यान से देखो। धीरे-धीरे वे धूप में से छाया में जा रहे हैं। इसका अर्थ है कि यह कत्थई गोला घूम रहा है, बेशक बहुत धीरे-धीरे।

बुध सूर्य की परिक्रमा बड़ी तेज़ी से करता है – तीन महीने में ही परिक्रमा पूरी कर लेता है, लेकिन अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाने में उसे पूरे छह महीने लगते हैं।



ज़रा सोचो, बुध का एक दिन बुध के वर्ष से दुगना बड़ा है! इसका मतलब है कि बुध पर दिन में दो बार "नया साल" मनाया जा सकता है, जैसे कि सुबह और शाम को। यह मत भूलो कि यदि वहां सुबह तब हुई थी जब पृथ्वी पर जनवरी का महीना था, तो शाम अप्रैल में होगी।

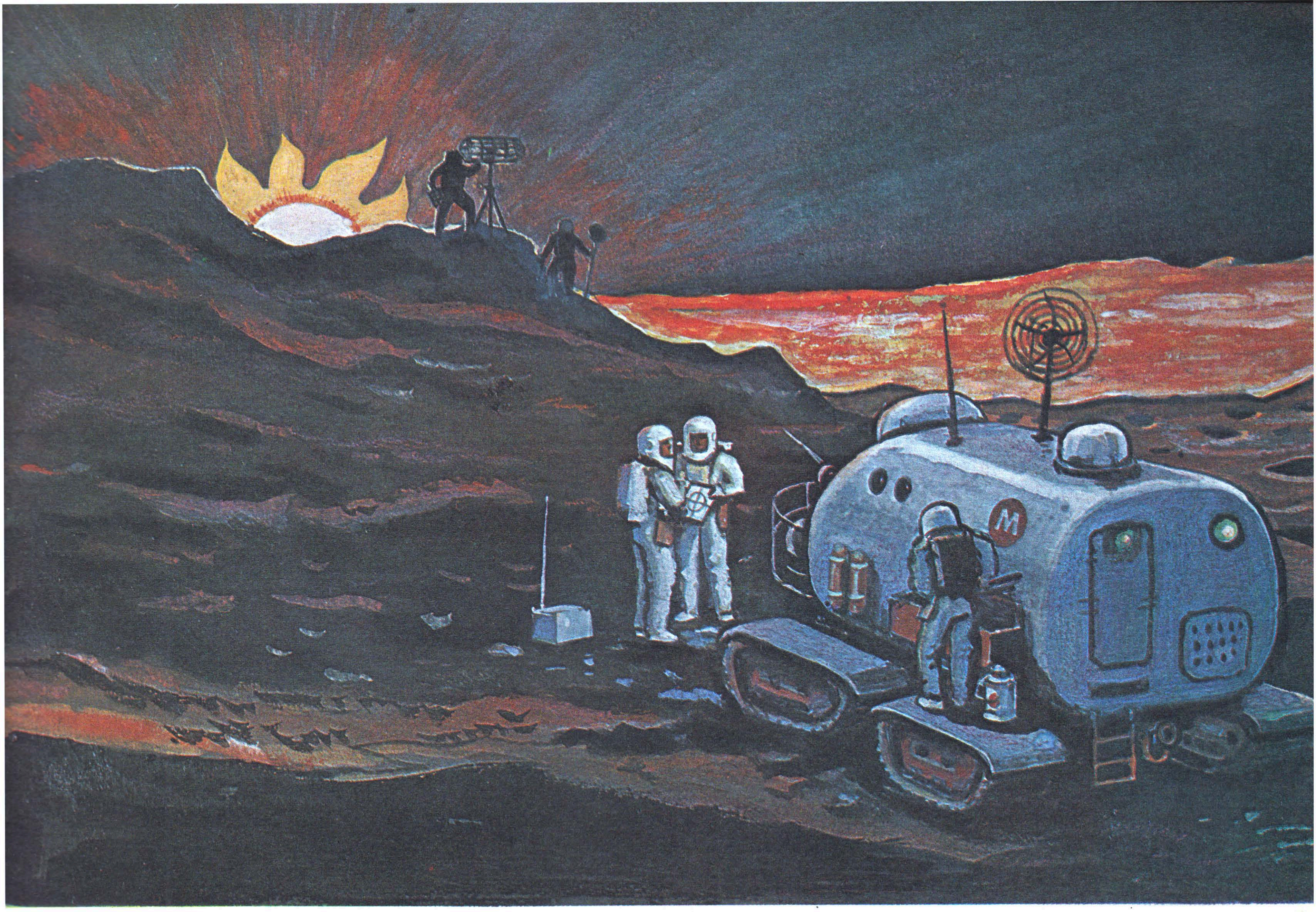
अजीब ग्रह है!

हम यहां किस स्थान पर उतरें?

सूर्य यहां से बिल्कुल पास है। वह विराट लगता है, पृथ्वी से जितना बड़ा दीखता है, उससे तीन गुना अधिक बड़ा। धूप में असह्य गर्मी है। वह सब कुछ झुलसाये देती है। बुध पर जहां धूप पड़ती है वहां तापमान ४००° सें० है! ऐसा गरम दिन तीन महीने चलता है! यहां तो अंतरिक्षयान उतारने की सोचनी भी नहीं चाहिए। तुरंत ही सब कुछ जल जायेगा। ऐसे तापमान में कांच और सीसा तक पिघल जाते हैं।

बुध में सारा जल कब का वाष्प बनकर उड़ चुका है और प्रायः सारी हवा भी अंतरिक्ष में उड़ गयी है। वहां केवल शुष्क पत्थर ही हैं। दिन में वे इतने तपे होते हैं कि उन पर पांव रखो तो जूते ही जल उठें।

उधर ग्रह के दूसरी ओर छाया में रात्रि का काला अभेद्य अंधकार होता है। विभीषण ठंड। तापमान शून्य



से नीचे १५०° सें० तक या उससे भी अधिक नीचे चला जाता है। सूरज तीन महीने तक छिपा रहता है। बुध का अपना चांद भी नहीं है। प्रकृति ने उसे यह "रात की बत्ती" नहीं दी है। शुक्र ग्रह ही, जो बुध के आकाश में हमारे आकाश की तुलना में कहीं अधिक उज्ज्वल होता है, थोड़ी देर के लिए ठंडी चट्टानों पर अपना प्रकाश डालता है, और जब वह डूबता है तो फिर से पूर्ण अंधकार हो जाता है।

फिर भी इस ग्रह पर हम उतरने के लिए ऐसा स्थान ढूंढ सकते हैं जहां खतरा नहीं होगा। यही नहीं, अंतरिक्षयान से बाहर निकलकर घूम भी सकते हैं। बेशक, अंतरिक्ष पोशाक पहनकर ही।

यह तो हो नहीं सकता कि शाम को जब सूरज डूबता है तो दिन की झुलसाती गर्मी एकदम रात की कड़ाके की सर्दी बन जाये। धीरे-धीरे ही ठंड होती होगी। ऐसा कुछ समय होता होगा, जब तपमान १५-२५° सें० होता होगा, यानी वैसा जो हमें सुहावना लगता है।

तो धूप और छाया के संधि-स्थल पर हम अपना अंतरिक्षयान उतारते हैं। उस संकरी पट्टी पर जहां अभी शाम है, जहां अब गर्मी नहीं रही और ठंड भी अभी नहीं हुई।

हम उतर गये और चारों ओर देखते हैं।

बुध चंद्रमा जैसा ही है। वैसे ही नीरस, धूसर मैदान हैं यहां – ऊबड़-खाबड़ और पत्थरों से भरे। चारों

ओर वैसे ही खड्ड – क्रेटर हैं, टीलों से घिरे। बस आकाश यहां चंद्रमा की तरह एकदम काला नहीं, बल्कि "काला-बैंगनी" है, क्योंकि बुध पर थोड़ी-सी हवा बची हुई है।

सूर्य इस समय ऐन क्षितिज के पास है। टीलों और चट्टानों से लंबी परछाइयां पड़ रही हैं। छाया में पत्थर ठंडे पड़ने लगे हैं। उन्हें छुआ जा सकता है। चट्टानों से सुखद गरमाहट उठ रही है।

लगभग बीस घंटे बीत जाते हैं। पृथ्वी के हिसाब से प्रायः पूरा एक दिन बीत गया, लेकिन यहां इतने समय में सूरज क्षितिज के पीछे डूबा ही है, सो भी पूरा नहीं, उसका सिरा अभी भी चमक रहा है।

कुछ घंटों में यह "प्रकाश स्तम्भ" भी बुझ जायेगा। अभी तो आस-पास के पहाड़ों की चोटियों पर धूप है। फिर धीरे-धीरे वहां से भी चली जाती है। पूर्ण अंधकार छा जाता है। ठंड तेज़ी से बढ़ने लगती है।

डरो नहीं। बुध घूमते हुए हमें छाया में ले गया है तो हम "वापस" भी तो चल सकते हैं और फिर से उजाले में पहुंच सकते हैं। या यह कहें कि धूप और छाया की सीमा पर। हम ऐसा भी कर सकते हैं कि चलते रहें और सारा समय धूप-छांव की इस पट्टी में ही मौजूद रहें।

तो हम ऐसा ही करते हैं। हमारे पास गाड़ी है, जिस पर बैठकर हम "सूरज को पकड़ने" निकलते हैं।

बुध धीरे-धीरे घूमता है, सो हर दिन हमें इतना अधिक फ़ासला नहीं तय करना होगा। छह महीने में हम सारे ग्रह का चक्कर लगा लेंगे। इसके साथ ही न गर्मी से भूने जायेंगे और न ठंड से अकड़ेंगे। हम सदा ऐसी जगह पर रहेंगे, जहां सर्दी-गर्मी ठीक हो होती है। चालाक हैं न हम?

इस ग्रह की विचित्रताओं पर चकित मत होओ। इसकी कक्षा एक ओर को खिंची हुई है। सूर्य इसके केंद्र में नहीं है, बल्कि एक सिरे के अधिक निकट है। इस कक्षा पर चलते हुए बुध कभी सूर्य के पास आ जाता है और कभी उससे दूर चला जाता है। बुध से सूर्य को देखो, तो वह कभी "फूल" जाता है, अधिक ताप देता है और कभी "सिकुड़" जाता है और तब गर्मी कम हो जाती है।

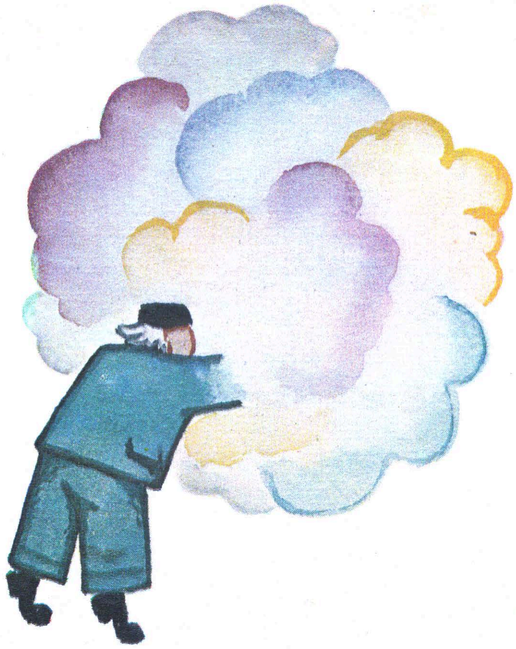
इस "ठंडी ऋतु" में बुध पर तापमान केवल २५०-३००° सें० होता है।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि इस "बेतुकी" कक्षा के कारण बुध के आकाश में सूर्य एक समान गति से नहीं चलता है। तीन महीने में एक बार उसकी गति धीमी हो जाती है, वह थम जाता है, थोड़ा पीछे को हटता है और थोड़ी देर रुका रहकर, मानो "ताकत बटोरकर" फिर से आगे बढ़ चलता है।

क्या अजूबा है! पृथ्वी पर ऐसा कभी नहीं होता।

लेकिन हमारे लिए ये "अजूबे" बड़े सुविधाजनक सिद्ध होते हैं। छह महीने की अपनी यात्रा में हम दो बार आराम कर पाते हैं, एक स्थान पर दो-दो हफ़्ते रह सकते हैं। हां, इसके बाद सूरज जब फिर से आकाश में गतिमान होता है तो हमें दिन में १५०-२०० किलोमीटर का फ़ासला तय करना पड़ता है। लेकिन हमारे पास तो गाड़ी है, सो ऐसा करना कठिन नहीं।

तो लो, हमने पूरे ग्रह का चक्कर लगा लिया। सब कुछ देख लिया। खेद की बात है कि बुध पर कोई प्राणी नहीं है। पत्थर ही पत्थर हैं। चारों ओर एक जैसे – मौन और निश्चल। निष्प्राण जगत है यह। चंद्रमा के ही जैसा।



शुक्र ग्रह पर हम क्या देखेंगे ?

आओ, अब हम शुक्र पर चलें। सूर्य से यदि गिनें तो यह सौर मंडल का दूसरा ग्रह है।

शुक्र ग्रह बुध से ज़रा भी नहीं मिलता। बुध पर नामालूम-सा, बहुत ही विरल वायुमंडल है, जिसमें कोई बादल नहीं। वहां पत्थर कभी धूप से झुलसते हैं तो कभी ठंड से चटखते हैं। कहीं कोई गति नहीं होती। पूर्ण निस्तब्धता है।

यहां सब कुछ इससे उलट है। शुक्र ग्रह के चारों ओर बहुत ही घना वायुमंडल है। उसमें इतने अधिक बादल हैं कि यह ग्रह सफ़ेद रूई से लिपटा प्रतीत होता है – बिल्कुल पूरी तरह, कहीं कोई "छेद" नहीं।

सदियों से खगोलविज्ञानी दिमाग लड़ाते आये थे: इस सफ़ेद आवरण के तले क्या है?

सभी इस बात पर सहमत थे कि शुक्र पर खासी गर्मी होनी चाहिए, क्योंकि वह सूर्य के अधिक समीप है।

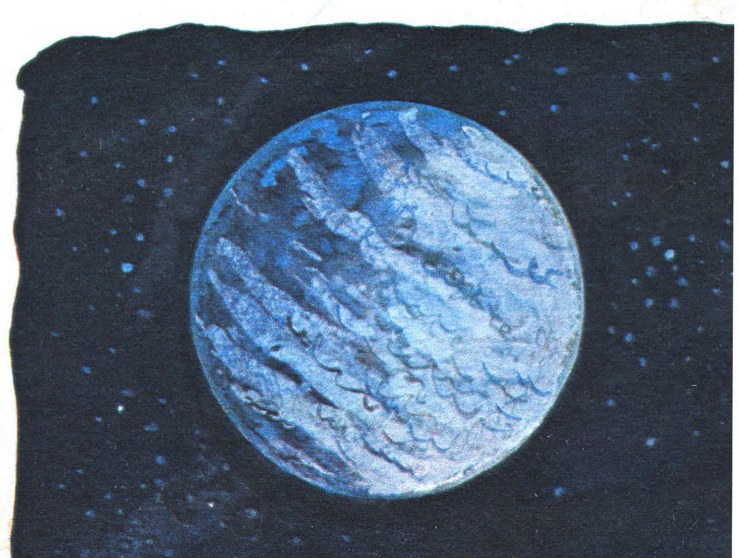
सभी यह समझते थे कि शुक्र पर सदा झुटपुटा रहता है। यदि वहां कोई जीव रहते हैं, तो उनके सिरों पर सदा बादल मंडराते रहते हैं। उन्हें इस बात का अनुमान तक नहीं होगा कि नीला आकाश है, सूर्य है, तारे हैं।

शेष बातों में वैज्ञानिकों के मत अलग-अलग थे। सभी अपने-अपने अनुमान लगाते थे।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना था शुक्र ग्रह सारा का सारा एक महासागर है। वहां आकाश से अनवरत वर्षा होती रहती है। मतलब चारों ओर पानी ही पानी है।

कुछ का कहना था कि वहां पानी कब का सूख चुका है, कि शुक्र ग्रह तपता शुष्क रेगिस्तान है।

कुछ अन्य वैज्ञानिक बीच की बात करते थे। उनका कहना था कि वहां शायद वह सब है, जो पृथ्वी पर है। सागर और मरुभूमि। पर्वत और वन। गर्मी के कारण खूब



घनी हरियाली है। बियाबान जंगलों में आश्चर्यजनक जानवर रहते हैं, काली घटाओं तले अद्‌भुत जीव उड़ते हैं।

किसका कहना सही है – यह जान पाने का कोई उपाय नहीं था। टेलीस्कोप में सफ़ेद "रूई का" गोला ही नज़र आता था।

फिर रेडियोखगोलविज्ञानी इस काम में शामिल हुए। उनके टेलीस्कोप खास तरह के होते हैं। उनमें देखना कुछ नहीं होता। वे अत्यंत संवेदनशील रेडियो और विशाल प्लेट जैसा विशेष रडार लेते हैं। ऐसा रडार जिधर "देखता" है, उस ओर से आनेवाली रेडियो तरंगें ही पकड़ता है।

रेडियोखगोलविज्ञानियों ने अपने रडार विभिन्न दिशाओं में घुमाये। पता चला कि सभी तपे हुए पिंडों से रेडियो तरंगें चारों ओर फैलती हैं। बेशक, ये तरंगें कोई शब्द या संगीत नहीं लातीं। यदि इन तरंगों को रेडियो पर सुना जाये तो बस सरसराहट ही सुनायी देगा। लेकिन यह सरसराहट भांति-भांति की होती है। कम तपे पिंडों से एक तरह की, अधिक तपे पिंडों से दूसरी तरह की। रेडियोखगोलविज्ञानी इस सरसराहट में भेद करना और उसकी मदद से दूर से ही वस्तुओं का तापमान जानना सीख गये हैं।

अब उन्होंने अपने रडार शुक्र ग्रह की ओर लक्षित किये। वहां से आती रेडियो तरंगें पकड़ीं और बताया – शुक्र के बादल ठंडे हैं, लेकिन उनके तले ठोस सतह है, जो लाल तपी हुई है।

दूसरे वैज्ञानिकों को इन बातों पर विश्वास नहीं हुआ। शुक्र पर भला बुध से अधिक गर्मी क्यों होगी, जबकि वह सूर्य से अधिक दूर है और उस पर बादल भी छाये रहते हैं?

यह पता लगाने के लिए कि आखिर वहां है क्या सोवियत वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने शक्तिशाली राकेटों की मदद से स्वचालित यंत्र शुक्र पर भेजने का निश्चय किया। इन्हें "अंतरग्रहीय स्वचालित स्टेशन" कहते हैं।

इन स्टेशनों को शुक्र तक पहुंचने में तीन महीने लगे! पहले दो स्टेशन शुक्र के पास से गुज़र गये। तीसरा शुक्र पर पहुंचा, पर उसने कोई सूचना नहीं भेजी। लेकिन इसके बाद के स्टेशनों ने अपना काम बखूबी पूरा किया। वह ग्रह के पास पहुंचे, उसके वायुमंडल में घुसे, उनके पैराशूट खुले और वे धीरे-धीरे रहस्यमय बादलों में उतरने लगे। उतरते हुए वे रेडियो-संकेतों से यह सूचना भेजते रहे कि अपने उपकरणों से वे क्या "अनुभव कर" रहे हैं।

रेडियोखगोलविज्ञानियों की खुशी का कोई ठिकाना न रहा! उनकी बात सच निकली। स्टेशनों के उपकरणों ने यह दिखाया कि शुक्र के वायुमंडल के तले पर तापमान ४७०° सें० है! बिल्कुल भट्ठी जैसी गर्मी।

उपकरणों ने और भी बहुत-सी रोचक जानकारी भेजी। हमें पता चला कि शुक्र ग्रह पर ऐसी गर्मी सदा रहती है – दिन हो या रात, जाड़ा हो या गर्मियां, कि शुक्र की वायु पृथ्वी की वायु से दसियों गुनी अधिक घनी है और वह बिल्कुल दूसरे तत्वों से बनी है। मनुष्य के लिए तो वह ज़हरीली ही है।

दो स्टेशनों ने तो शुक्र की तपी सतह पर उतरने के बाद अपने चारों ओर के दृश्य के फ़ोटो खींचे और दूरदर्शन की मदद से हमें शुक्र का धरातल, उसके पत्थर दिखाये।

अब हम जीवन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त इस ग्रह पर उतरने की तैयारी कर रहे हैं। पर हमारा अंतरिक्ष-यान अग्निसह और मज़बूत है। तो आओ, चलें!

हम "रूई के" विशाल गोले के पास पहुंचते हैं। उफ़, डर लगता है! कुछ दिखायी भी तो नहीं देता कि कहां उतर रहे हैं। हमारे नीचे बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। अच्छा हो, अगर नीचे मैदान हो। कहीं पहाड़ की नुकीली चोटी हुई तो? या कोई अथाह गर्त?

हमारा यान बादलों में "डूबने" लगता है। चारों ओर सफ़ेद ही सफ़ेद बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। अंधेरा होने लगा है।

लो, बादल खत्म हो गये। अब वे हमारे सिरों के ऊपर पीली-पीली "छत" हैं। नीचे कई किलोमीटर की गहराई पर हल्की धुंध के पीछे काले और उजले धब्बे नज़र आते हैं। यह शुक्र ग्रह का ठोस धरातल है!

एक धक्का-सा लगता है! हमारा यान एक ओर को झुक जाता है, चट्टान पर रगड़ खाता हुआ कहीं नीचे फिसलता है, फिर से धक्का लगता है और यान खड़ा हो जाता है।



लगता है सब ठीक-ठाक है।

हम अग्निसह अंतरिक्ष पोशाक पहनकर बाहर निकलते हैं।

हां, शुरू में तो बड़ा डरावना लगता है। कैसा मनहूस दृश्य है! चारों ओर एक ही जैसा, रंगहीन, पत्थरों भरा मैदान है। न कहीं पानी, न कहीं कोई झाड़ी, जीवन का कहीं कोई चिन्ह नहीं है। बस, निश्चल पत्थर ही पत्थर हैं। सिर के ऊपर गहरी सुरमई घटाओं की अभेद्य चादर तनी हुई लगती है। प्रकाश धूमिल है, कहीं कोई छाया नहीं। हवा धुंधली है, जैसे कि उसमें हल्का धुआं उड़ रहा हो। दूर के पत्थर इस धूसर धुंधलके में विलय हो जाते हैं। क्षितिज दिखायी नहीं देता।

लेकिन यह चंद्रमा और बुध जैसा एकदम गतिहीन जगत नहीं है। ध्यान से देखा जाये तो पता चलेगा कि यहां कुछ हिल-डुल रहा है। हवा धीमे-धीमे चलती है। पृथ्वी की तरह तो नहीं। पृथ्वी पर तो हवा के झोंके आते हैं, उसकी दिशा बदलती रहती है। यहां ऐसा प्रतीत होता है कि तुम विशाल नदी के तले पर खड़े हो और यह नदी शांत, मंथर गति से बहती जा रही है। छोटे-छोटे कंकड़ इस "बहाव" में अलसाये-से लुढ़कते-पुढ़कते हैं। धुंधलके में कहीं-कहीं धीमे-धीमे चलती मटमैली धाराएं-सी दीख पड़ती हैं। यह शायद धूल है। यदि दूर नज़र डाली जाये तो पत्थर डोलते प्रतीत होते हैं, जैसा पृथ्वी पर तब होता है जब अलाव से उठती गर्म हवा के पार देखो। वायु की असाधारण सघनता का स्पष्ट आभास होता है। मिट्टी पर पांव रखने पर पांवों तले से कीचड़-सा उठता है और वायु-धारा उसे धीरे-धीरे एक ओर ले जाती है, जैसी पृथ्वी पर जब तुम नदी में गोता लगाते हो तो नदी के तले से कीच उठता है। खड़ा होना मुश्किल है। प्रवाह का ज़ोर पड़ता है। लगता है जैसे कोई अपने हाथों से हौले-से, किंतु आग्रहपूर्वक तुम्हें धकेल रहा है। प्रवाह के साथ-साथ चलना आसान है। लेकिन प्रवाह के विपरीत चलना कठिन है, झुकना पड़ता है, पांव दबा-दबाकर रखना पड़ता है। हम जल्दी ही थक जाते हैं।

अंतरिक्ष पोशाक की बदौलत गर्मी तो हमें अभी नहीं लग रही। हां, पोशाक के मोटे तलवे भी पैरों को गर्मी से नहीं बचा पाते।

हम पहला प्रयोग करते हैं – अपने साथ लायी शीशी में से सपाट पत्थर पर थोड़ा-सा पानी उंडेलते हैं। जैसा गरम तवे पर पानी डालने पर होता है वैसे ही यह पानी भी छोटी-छोटी बूंदों में इधर-उधर फैल जाता है, ये बूंदें चटखती हैं, छींटें छोड़ती हैं और वाष्प बनकर उड़ जाती हैं। कुछ सेकंड में ही पत्थर फिर से सूख जाता है।

हमारे पास सीसे का एक टुकड़ा है। हम उसे पत्थर पर रखते हैं। धातु का स्लेटी टुकड़ा तुरंत ही पिघलकर रुपहला द्रव बन जाता है।

हम एक गड्ढा खोदने की कोशिश करते हैं। बड़े पत्थर संबल से एक ओर को हटाते हैं, उनके तले जमी परत तोड़ते हैं। बेलचे से उसे एक ओर फेंकते हैं। मुश्किल से पथरीली ज़मीन में आधा मीटर गहरा गड्ढा खोदते हैं। इसके तले पर सीसे का टुकड़ा फेंकते हैं, वह पिघलता नहीं। इसका मतलब है कि ग्रह के धरातल की एक पतली परत ही इतनी अधिक तपी हुई है। गहराई में "ठंडक" है। वहां तापमान केवल ३००° सें० है।

अंतरिक्षयान से हमें निकले कुछ मिनट ही हुए हैं, तो भी हमें अपनी तापसह पोशाकों में भी गर्मी लगने लगी है।

हम वापस अंतरिक्षयान में घुसते हैं। जल्दी से ऊपर चलें!

हम बटन दबाते हैं। यान के ऊपर गोला-सा बनता है। यान धरातल से उठता है और ऊपर "निकलने" लगता है।

खिड़की के बाहर धीरे-धीरे उजाला होता जाता है। फिर अचानक केबिन में सूर्य की चकाचौंध करती किरणें घुस आती हैं। जैसे पानी में से डाट बाहर निकलता है वैसे ही हमारा यान बादलों में से बाहर निकल आता है। चारों ओर फिर वही जाना-पहचाना शीतल, पारदर्शी, आलोकित अंतरिक्ष है! कितना अच्छा है!

ऐसा है शुक्र ग्रह! पर खैर, हम निराश नहीं होंगे।

पृथ्वी पर महासागर के तले पर भी रह पाना आसान नहीं है। वहां सदा ठंड होती है और अंधकार रहता है। लेकिन महासागर के वासियों को कोई तले

पर चलने को नहीं कहता। महासागर में कुत्ते-बिल्लियां तो रहते नहीं, जिन्हें पांवों तले ज़मीन चाहिए। महासागर में मछलियां रहती हैं। उनमें बहुतों को यह पता तक नहीं कि तला भी है। वे कभी तले पर नहीं जातीं। वे जीवन भर तैरती रहती हैं और जल की सतह के पास ही जाती हैं।

शुक्र का वायुमंडल कुछ हद तक हमारे महासागर जैसा ही है। हो सकता है उसमें भी सतह के पास तैरते हुए जीना संभव हो?

शुक्र के बादलों की ऊपरी सतह पर इतनी गर्मी नहीं है। वहां वायु प्रायः इतनी ही घनी है जितनी कि पृथ्वी की सतह पर। बेशक, हम-तुम ऐसी हवा में "तैर" नहीं सकते। हम नीचे गिर जायेंगे। पक्षी पंख फड़फड़ाते हुए टिके रहेंगे, लेकिन उन्हें थोड़ा-बहुत आराम करने की भी ज़रूरत होती है। तब पक्षी कहां बैठेंगे? छोटे-छोटे रोयेंदार कीड़े-मकोड़ों की बात और है। वे धूल के कणों की भांति ऐसी हवा में उड़ते रह सकते हैं।

सो बहुत मुमकिन है कि शुक्र ग्रह पर बादलों के ऊपर ऐसे सूक्ष्म "रोयेंदार जीव" रहते हों। उन्हें इससे कोई वास्ता ही नहीं कि नीचे प्रचंड गर्मी है। वे वहां जायेंगे ही क्यों?

कहने का मतलब यह कि शुक्र ग्रह का अध्ययन करना चाहिए। लोग यहां आया करेंगे, लेकिन वायुमंडल के तले पर वे नहीं जायेंगे। क्या ज़रूरत है इसकी? वे उड़न-गुब्बारों पर बादलों के ऊपर उड़ते रहेंगे। विभिन्न अग्निसह उपकरण नीचे लटकायेंगे, रेडियोलोकेटरों से शुक्र के धरातल को टटोलेंगे। शायद वहां ऊंचे पहाड़ हों, जिनके शिखरों पर इतनी गर्मी न हो। हो सकता है, ध्रुवों पर भी गर्मी कम हो।

कुछ वैज्ञानिकों ने अभी से यह मत प्रकट किया है कि शुक्र ग्रह को "ठीक-ठाक" किया, जीने लायक बनाया जा सकता है। उन्होंने यह सुझाव रखा है कि शुक्र के वायुमंडल में खास तरह के जीवाणु छोड़े जायें। हवा में तिरते हुए ये जल्दी ही बढ़ जायेंगे, सारे ग्रह पर फैल जायेंगे और कुछ वर्षों में शुक्र की वायु की संरचना बदल देंगे। वायुमंडल को पारदर्शी बना देंगे।

तब ग्रह की सतह धीरे-धीरे ठंडी पड़ जायेगी। बादलों से वर्षा होगी। नदियां, झीलें, समुद्र बन जायेंगे। नम मिट्टी पर लोग बीज बोयेंगे। जंगल उग आयेंगे। वे हवा में आक्सीजन भर देंगे, उसे पशु-पक्षियों और मनुष्य के सांस लेने योग्य बना देंगे।

बड़ा आकर्षक विचार है न? ज़रा सोचो तो दूसरी पृथ्वी बनायेंगे!

लेकिन अभी तो हम इसे कपोल-कल्पना ही मानेंगे। फिलहाल। आगे देखी जायेगी। शुक्र ग्रह का कायाकल्प करने से पहले उसका अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए।

अमरीकी स्वचालित स्टेशन शुक्र की परिक्रमा करता रहा और रेडियोलोकेटर से उसने शुक्र की सतह टटोली। इस तरह यह पता चला कि वहां पहाड़ कहां हैं और मैदान कहां। ग्रह के मानचित्र बनाये गये हैं। सोवियत स्टेशन शुक्र ग्रह की उड़ानें भर रहे हैं। हर नया स्टेशन इस आश्चर्यजनक ग्रह के बारे में नयी जानकारी भेजता है।

...अभी तो हम आगे चलते हैं। तीसरे ग्रह पर रुके बिना हम आगे बढ़ते हैं। यह तो हमारी पृथ्वी ही है।

हाथ हिलाकर हम अपने मित्रों का अभिवादन करते हैं और चौथे ग्रह मंगल की ओर उड़ चलते हैं।



क्या मंगल पर मंगलवासी हैं?

सो, हम मंगल ग्रह को जा रहे हैं। अभी तो वह दूर है और बालुई लाल रंग के छोटे-से गोले जैसा दीख पड़ता है।

कितना भिन्न है यह शुक्र ग्रह से! इस पर पतला-सा, पारदर्शी वायुमंडल है। यहां कोई बादल नहीं हैं। मंगल किसी तरह छिपा नहीं हुआ है और हम इसका विस्तार से प्रेक्षण कर सकते हैं।

इस पर एक ओर उज्ज्वल सफ़ेद धब्बा है – टोपी जैसा। यह मंगल के दो ध्रुवों में से एक है। यह "टोपी" तभी नज़र आती है जब मंगल पर जाड़ा होता है। गर्मियों में यह नहीं होती। कहीं यह हिम तो नहीं?

मंगल का ज़्यादातर भाग उजला, लाल-सा है। इसकी पृष्ठभूमि में काले-काले-से धब्बे दिखायी देते हैं। लोगों ने पहली बार जब मंगल को टेलीस्कोप से देखा तो इन धब्बों को उन्होंने "समुद्र" कहा। वे सोचते थे कि ये भी वैसे ही समुद्र हैं, जैसे कि पृथ्वी पर हैं – जल से भरे। लेकिन जल तो धूप में चमकता। उधर मंगल पर कभी कुछ नहीं चमका। और लोग शीघ्र ही समझ गये कि ग्रह के काले भाग एकदम शुष्क हैं।

हां, उनका नाम "समुद्र" ही बना रहा।

अगर गौर से देखा जाये तो बड़े-बड़े काले धब्बों के अलावा मंगल ग्रह पर कभी-कभी कुछ विचित्र काली रेखाएं भी नज़र आती हैं। ये सीधे तने धागों जैसी हैं और अलग-अलग दिशाओं में चली गयी हैं। ये रेखाएं वैसी ही लगती हैं जैसे कि घड़े पर पड़ी दरारें।

इन रहस्यमय धारियों को लोग "नहरें" कहने लगे। हालांकि लोग समझते थे कि यदि "समुद्र" शुष्क हैं तो "नहरें" पानी से भरी नहीं हो सकतीं। और फिर इनकी चौड़ाई भी दसियों किलोमीटर है।

लोगों का ध्यान इस बात की ओर गया कि मंगल के "समुद्रों" और "नहरों" का रंग जाड़ों में फीका पड़ जाता है। वसंत में वे काले हो जाते हैं, मानो "जी उठते" हैं, कभी-कभी लगता है कि वे हरे हो गये हैं। पतझड़ में फिर लगता है कि उनका रंग फीका पड़ गया है।

ऐसा तो पृथ्वी पर वनों के साथ भी होता है! जाड़ों में पेड़ों पर पत्तियां नहीं होतीं और यदि इन दिनों ऊपर से मान लो हवाई जहाज़ से इन्हें देखा जाये तो लगता है कि वे फीके-धूसर हैं, पारदर्शी हैं। गर्मियों में पेड़ों पर हरी पत्तियां हैं तो वन का रंग गाढ़ा लगता है।

इसलिए बहुत से लोग यह मानने लगे कि मंगल

के काले धब्बे उसके वन हैं, और वे स्थान जहां वे उगते हैं नम घाटियां हैं।

इस बात पर विश्वास न करना कठिन था, मंगल के वनों का रंग भी तभी गाढ़ा होने लगता है जब ध्रुवीय हिम पिघलने लगता है। और शुरू में ध्रुव के पास ही वन काले पड़ते हैं, फिर धीरे-धीरे यह सिलसिला आगे चलता है। लगता है जैसे हिम के पिघलने से बना जल ग्रह पर बह रहा है और जहां-जहां वह पहुंचता है वहां-वहां पेड़-पौधे जी उठते हैं।

लेकिन वह बहता कैसे है? क्या "नहरों" में? ये "नहरें" इतनी सीधी क्यों हैं?

प्रकृति में एकदम सीधी रेखाएं प्रायः नहीं पायी जातीं। नदियां बल खाती चलती हैं। सागर तट कटे-छंटे होते हैं। पहाड़ बिना किसी तरतीब के बने होते हैं।

लेकिन मनुष्य को सीधी रेखाएं पसंद हैं। वह सीधा बांध बनाता है – इस में कम खर्चा आता है। जंगल में सीधा रास्ता बनाता है – वह अधिक सुविधाजनक है। मनुष्य बुद्धिसंपन्न जीव है और वही काम करता है, जो अधिक अच्छा, अधिक सुविधाजनक होता है।

सो, कुछ वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि मंगल की "नहरें" बुद्धिसंपन्न मंगलवासियों ने बनायी हैं। उनका कहना था कि मंगल पर जल की कमी है। उसके सारे विशाल उज्ज्वल धब्बे रेगिस्तान हैं। वहां न सागर हैं, न झीलें और न नदियां। वहां वर्षा भी नहीं होती। लेकिन पानी के बिना तो जी नहीं सकते! सो, वसंत में जब ध्रुव पर हिम पिघलता है तो मंगलवासी यह अमूल्य जल जमा करते हैं और किन्हीं पाइपों से इसे गरम देशों को, अपने खेतों और नगरों को भेजते हैं।

पानी जल्दी-जल्दी पहुंचे इसके लिए पाइप सीधे ले जाते हैं। इन पाइपों के पास-पास मंगलवासियों के सिंचित खेत और बगीचे हैं। उनसे आगे रेगिस्तान है। सारे ग्रह के लिए पानी काफ़ी नहीं पड़ता।

पानी के पाइपों के आस-पास हरियाली के ये टुकड़े ही हमें दूर से रहस्यमयी धारियां लगते हैं।

कितना सुंदर लगता है यह सब लोगों के सपनों में! मंगल के नगर! मंगल के महल! मंगल के फलते-फूलते बाग!

अब हम मंगल के पास पहुंच रहे हैं और... हमारे सपने एक-एक करके टूटते जाते हैं।

मंगल के सभी उजले स्थल तो, जैसा कि हमने सोचा ही था, रेतीले मैदान निकले। हां, कहीं-कहीं इनमें चंद्रमा पर क्रेटरों जैसे गोल गड्ढे हैं। "समुद्र" तो बिल्कुल उलट ही निकले हैं। वे "वनों से भरी नम घाटियां" नहीं हैं। प्रायः सभी "समुद्र" सूने पहाड़ी इलाक़े हैं।

अजीब बात है – यहां पास से "नहरें" भी नहीं दीख पड़तीं। उनके स्थान पर पर्वत, क्रेटर और खड्ड ही हैं – वैसे ही जैसे चारों ओर हैं।

यह क्या बात है? पहाड़ हमें मैदानों से अधिक काले क्यों दीखते हैं? वसंत में और भी अधिक काले क्यों हो जाते हैं? वे "नहरें" कहां गयीं जिनसे हमें बहुत-सी रोचक बातें जान पाने की आशा थी?

हम मंगल के और भी निकट पहुंचते हैं और उसके "रहस्य" एक-एक करके खुलने लगते हैं।

मंगल पर रेत और धूल बहुत है। पृथ्वी की ही भांति उनका रंग चट्टानों के रंग से उजला है।

मंगल ग्रह पर तेज़ हवाएं चलती हैं। वे "ग्रह के सभी उभरे हुए भागों" से धूल उड़ा ले जाती हैं।

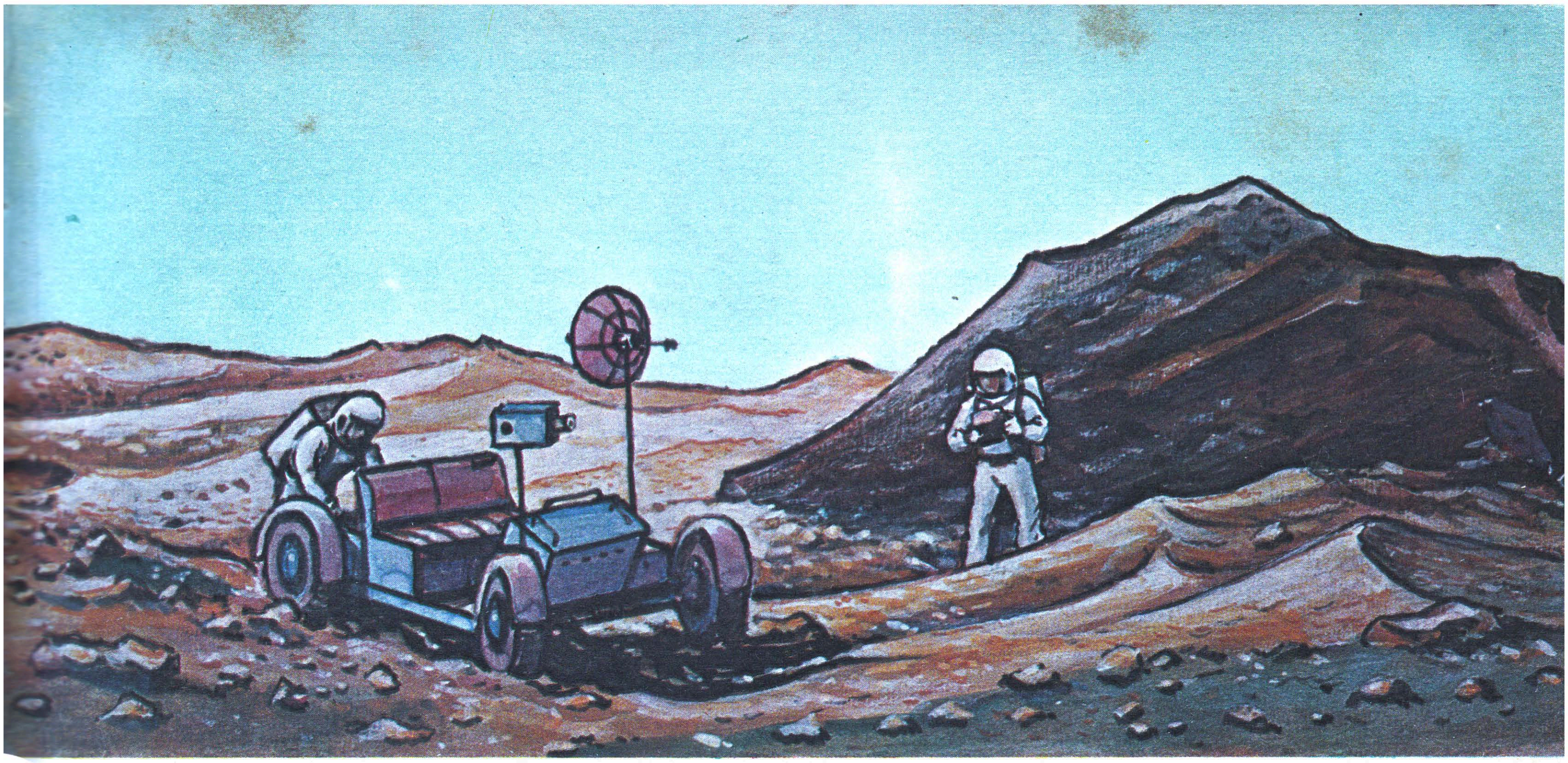




दूसरे शब्दों में पहाड़ों से मैदानों में उड़ा ले जाती हैं। इसलिए पर्वतों पर कभी धूल नहीं होती, वे "साफ़-सुथरे" होते हैं। इसीलिए काले दीखते हैं। पर्वतों की तलहटी में मैदानों पर सदा धूल और रेत बिछी रहती है। इसीलिए वे उजले दीखते हैं।

वसंत में ध्रुव पर हिम पिघलता है। वहां से नम हवाएं चलती हैं। वे ग्रह को "पोंछती" हैं। इसके बाद पर्वत और भी अधिक "साफ़-सुथरे" हो जाते हैं। बड़ी सीधी-सादी बात है। किन्हीं जंगलों की ज़रूरत ही नहीं।

लेकिन "नहरों" का क्या हुआ? लगता है कि यह दृष्टिभ्रम ही है। खड्ड, क्रेटर, पहाड़ और दूसरी ऊबड़-खाबड़ जगहें मंगल पर एकदम बेतरतीब हैं। कहीं अधिक, कहीं कम। लेकिन कहीं पर तीन-चार क्रेटर संयोगवश एक लाइन में बन गये हैं। कहीं पर पर्वत शृंखला संयोगवश प्रायः सीधी रेखा में चली गयी है। कहीं ऐसा हुआ है कि रेतीले मैदान को चीरते एकदम सीधे खड्ड चले गये हैं। ये सभी स्थान ही दूर से हमें सीधी धारियां लगते हैं।



मंगलवासियों की बनायी कोई चीज़ तो अभी तक हमें नहीं नज़र आयी है। लगता है ऐसा कुछ यहां पर है भी नहीं।

तो भी हमें लगता है कि मंगल चंद्रमा, बुध या शुक्र की भांति पूर्णतः जीवनरहित ग्रह नहीं है। वे तो एकदम शुष्क हैं, जैसे कि भट्ठी में तपा पत्थर।

और पानी के बिना किसी भी रूप में जीवन का अस्तित्व नहीं हो सकता। उधर मंगल ग्रह पर थोड़ी-सी नमी है ही।

कुछेक सोवियत और अमरीकी स्वचालित स्टेशन मंगल तक गये हैं। वे इस ग्रह की परिक्रमा करते हुए अपने उपकरणों से इसका अध्ययन करते रहे, चारों ओर से इसके फ़ोटो खींचते रहे।

और उन्होंने बहुत सी दिलचस्प बातों का पता लगाया।

मंगल के ध्रुवों पर जो "सफ़ेद टोपियां" नज़र आती हैं वे मुख्यतः "सूखी बर्फ़" से बनी हैं। जमी हुई कार्बन डाइआक्साइड को ही सूखी बर्फ़ कहते हैं। लेकिन इसके अलावा जमा हुआ जल – हिम – भी है। यह वसंत में पिघलता है, वाष्पित होता है। इस जल-वाष्प को हवाएं ग्रह के गरम भागों को ले जाती हैं और वहां रात को यह ठंडी मिट्टी पर तुषार के रूप में गिरती है। सुबह होने पर धूप में यह तुषार पिघलता है और कुछ मिनटों के लिए मिट्टी गीली हो जाती है। वनस्पतियों और कीटों जैसे जीव इतने में अपनी प्यास बुझा सकते हैं।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि मंगल का निकट से प्रेक्षण करते हुए स्वचालित स्टेशनों ने यहां सूख गयी नदियों के पाट देखे और उनके फ़ोटो खींचे। क्या इसका अर्थ यह है कि कुछ समय पहले तक मंगल पर जल-धाराएं बहती थीं? तो फिर यह सारा जल कहां गया? शायद मिट्टी में समा गया और वहां जम गया? मंगल पर तो बहुत ठंड है न।

लेकिन स्वचालित स्टेशनों ने उन "भट्ठियों" का भी पता लगाया है, जो मिट्टी में जमे जल को पिघला सकती हैं। उन्हें मंगल पर ज्वालामुखी मिले हैं। अब तो वे शांत हैं, आग नहीं उगल रहे हैं, लेकिन इनके इर्द-गिर्द ग्रह के गर्भ से ताप उठता है।

सो जमी हुई मिट्टी पिघल सकती है। और यदि ज्वालामुखी का विस्फोट शुरू हो गया, उसमें से तपा हुआ लावा निकलने लगा तो चारों ओर सब कुछ गरम

हो जायेगा। जल-धाराएं बहने लगेंगी।

इस सब का अर्थ यह है कि प्राणी यहां हवा में से भी और मिट्टी में से भी जल पा सकते हैं।

इसलिए हमें लगता है कि मंगल पर "कोई न कोई" होना चाहिए। लेकिन कौन?

बेशक, हम वहां मनुष्य जैसे प्राणियों के होने की उम्मीद नहीं कर सकते। लेकिन वनस्पतियां और छोटे-छोटे जीव तो हो ही सकते हैं।

वे इस ग्रह पर कहां रह सकते हैं? उन्हें कहां ढूंढें?

पृथ्वी पर प्राणी ग्रह की सतह पर रहते हैं। वहां उनके लिए जीना सुविधाजनक है – ताप भी और जल भी पर्याप्त है। लेकिन मंगल पर तो शायद मिट्टी में दुबककर ही रहना ठीक होगा। अगर सतह पर निकला भी जाये तो ज्वालामुखियों के क्रेटरों में ही, जहां इतनी ठंड नहीं और नमी भी अधिक है।

अब सबसे दिलचस्प बात देखो। मंगल के पर्वतों और मैदानों के ऊपर उड़ते हुए स्वचालित स्टेशनों ने कुछ रंगीन फ़ोटो खींचे। इनमें कुछ क्रेटरों का तला हरा-हरा है। शायद यही मंगल पर जीवन है? शायद हम मंगल की किन्हीं आश्चर्यजनक वनस्पतियों की हरियाली देख रहे हैं, जिसके बीच कोई अनजान जीव घूम-फिर रहे हैं?

१९७६ में दो अमरीकी स्वचालित स्टेशन 'वाइकिंग-१' और 'वाइकिंग-२' मंगल ग्रह पर उतरे। उन्हें इस प्रश्न का निश्चित उत्तर पाना था कि मंगल ग्रह पर जीवन है कि नहीं।

'वाइकिंगों' ने अपने धातु के सिर इधर-उधर घुमाये और आस-पास के स्थल के बहुत अच्छे फ़ोटो रेडियो तरंगों से पृथ्वी पर भेजे। इन में हमने असीम रेतीले मैदान ही देखे, जिनमें रेत में अधदबे पत्थर बिखरे हुए थे।

फ़ोटो पर जीवन के कोई चिन्ह नज़र नहीं आते थे।

तब 'वाइकिंगों' ने अपने आस-पास थोड़ी मिट्टी खोदी, उसे "निगल" गये और बड़ी देर तक अपने अंदर उसका अध्ययन करते रहे, यह ढूंढते रहे कि कहीं उसमें कोई सूक्ष्म जीवाणु ही मिल जायें। पृथ्वी पर तो जीवाणु सर्वत्र हैं, मरुभूमि की रेत में भी।

'वाइकिंगों' ने पूरी ईमानदारी से काम किया और यह सूचना भेजी: "लगता है कि मंगल पर कोई जीवन नहीं है, लेकिन साथ ही मानो कुछ है भी।"

लो, समझते रहो, क्या मतलब है इसका। सो, लोगों को अब तक यह नहीं पता कि मंगल पर जीवन है कि नहीं।

इसमें कोई शक नहीं कि वहां जीवन की संभावना है। सो, पहले की ही भांति हम यह उम्मीद रख सकते हैं कि देर-सबेर इसे खोज लेंगे।

तो लो, हम मंगल ग्रह के बिल्कुल पास पहुंच गये हैं। एक सपाट जगह चुनकर वहां अपना यान उतारते हैं।

आकाश पर कहीं कोई बादल नहीं है। आकाश का रंग गाढ़ा बैंगनी है, जैसा बुध पर था। वहां की ही भांति यहां भी धूप से ओट कर लेने पर दिन में तारे देखे जा सकते हैं।

हम अपने इर्द-गिर्द नज़र दौड़ाते हैं। एक ओर क्षितिज तक बालुई टीले चले गये हैं। दूसरी ओर थोड़ी दूरी पर सुंदर पर्वत हैं।

हम पैदल इन पर्वतों की ओर चलते हैं।

बेशक, हमने अपनी अंतरिक्ष पोशाक पहन रखी है। सिलंडरों में भरी पृथ्वी की वायु से हम सांस लेते हैं। यहां की वायु में ऐसे तत्व हैं कि यह हमारे सांस लेने के काम नहीं आ सकती। और फिर हमारी वायु इससे सौ गुनी अधिक सघन होती है।

इतनी विरल वायु में कोई पक्षी और कीट-पतंगे नहीं उड़ सकते। मंगल पर केवल रेंगा, दौड़ा और कूदा जा सकता है।

यदि मंगलवासी हैं तो वे पंखोंवाले कतई नहीं हैं।

मंगलवासियों की कल्पना लोगों ने किन-किन रूपों में नहीं की है!

कोई कहता था कि वे बिल्कुल छोटे-छोटे हैं और चींटियों जैसे हैं।

कोई उनकी कल्पना अष्टभुजों के रूप में करता था।

किसी का कहना था कि वे लोगों जैसे ही होने चाहिए।

क्या पता वे सचमुच हों ही?

खैर, जैसे भी वे हों, उन्हें हमारी पृथ्वी में अवश्य रुचि होगी। अगर हमारी उनसे भेंट हो गयी तो हम एक मंगलवासी को अपने साथ ले आयेंगे। उसे पृथ्वी दिखायेंगे।

वैसे, वह बेचारा पृथ्वी पर गर्मी से बेहाल हो जायेगा। उसे खिड़कीवाले फ्रिज़ में बिठाकर घुमाना होगा।

इस खिड़की में से जब वह पृथ्वी पर समुद्र देखेगा तो शायद ईर्ष्या से रोने लगेगा। उसके लिए तो यह वैसे ही होगा, जैसे कि हम केक का बना पहाड़ देखें या मीठे दूध की नदी। मंगल में तो जल शायद अमूल्य वस्तु की तरह बोतलों में बिकता होगा। हमारे यहां तो इसके सागर-महासागर हैं।

पृथ्वी के बादलों को तो हमारा मंगलवासी सारा-सारा दिन निहारता रहेगा। वहां पर तो ऐसा कुछ भी नहीं होता। हमारे बादल इतने सुंदर होते हैं, खास तौर पर सूर्योदय और सूर्यास्त के समय।

हम पहाड़ों की ओर चलते जा रहे हैं। बहुत देर तक चलते जाते हैं। पैर रेत में धंसते हैं।

पहाड़ों की ढलानों पर कुछ हरा-हरा रंग दीखता है, जैसे कि चट्टानों पर काई उग आयी हो।

चट्टानें पास आ गयी हैं। दूर से हमें जो काई लगी थी, वह छोटे-छोटे पौधे हैं।

अरे, यह क्या! पौधों तले कुछ हिल-डुल रहा है! कोई हमारी ओर कूदा और फिर पौधों में दुबक गया! अरे, ये तो बहुत हैं! इन्होंने हमें देख लिया है! हमारी ओर आ रहे हैं...

कौन हैं ये?

आगे हम तुम्हें कुछ नहीं बतायेंगे। तुम जानते ही हो कि मंगल ग्रह पर अभी तक कोई नहीं गया है। मंगल पर जीवन के बारे में तुम स्वयं कल्पना करो। यही अधिक रोचक रहेगा। और जब बड़े हो जाओगे तो मंगल पर जाना और देखना कि तुमने जो कल्पना की थी वह कितनी सही है।

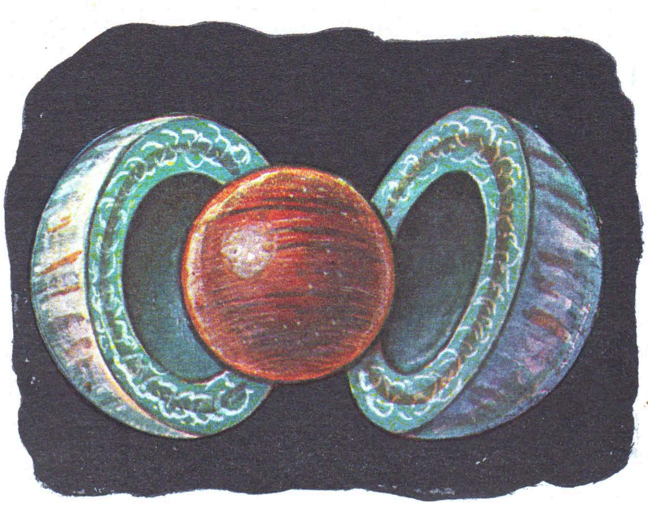


बृहस्पति और शनि कैसे हैं ?

बुध, शुक्र और मंगल पर हम उतर सके थे। वहां बहुत आरामदेह तो नहीं, लेकिन पैरों तले ठोस ज़मीन तो है, जिस पर खड़ा हुआ जा सकता है।

बृहस्पति और शनि पर उतर पाना असंभव है। ये ग्रह प्रायः पूरे के पूरे बादलों से ही बने हुए हैं।

बृहस्पति जितना बड़ा लगता है उतना है नहीं। वह बादलों के विराट गोले के बीच में स्थित है, जैसे कि चैरी में गुठली। हम पृथ्वी से बृहस्पति ग्रह को नहीं, इस बादलों के गोले को देखते हैं और कहते हैं: "कितना बड़ा है बृहस्पति!" बड़ा तो बस उसका परिधान है।



लेकिन बृहस्पति के पूरे चौदह उपग्रह हैं, चौदह "चांद"। उनमें कई बहुत बड़े-बड़े भी हैं। दो तो हमारे चंद्रमा जितने बड़े हैं और दो बुध से भी छोटे नहीं हैं।

पृथ्वी से बृहस्पति के उपग्रहों को बारीकी से नहीं देखा जा सकता – बहुत दूर हैं वे। लेकिन अभी कुछ समय पहले अमरीकी स्वचालित स्टेशन 'पायोनियर' और 'वोयेजर' बृहस्पति और शनि ग्रहों के पास से उड़ते हुए निकले। उन्होंने इन ग्रहों और इनके उपग्रहों के पास से फ़ोटो खींचे।

बृहस्पति के सबसे बड़े उपग्रह बहुत रोचक निकले।

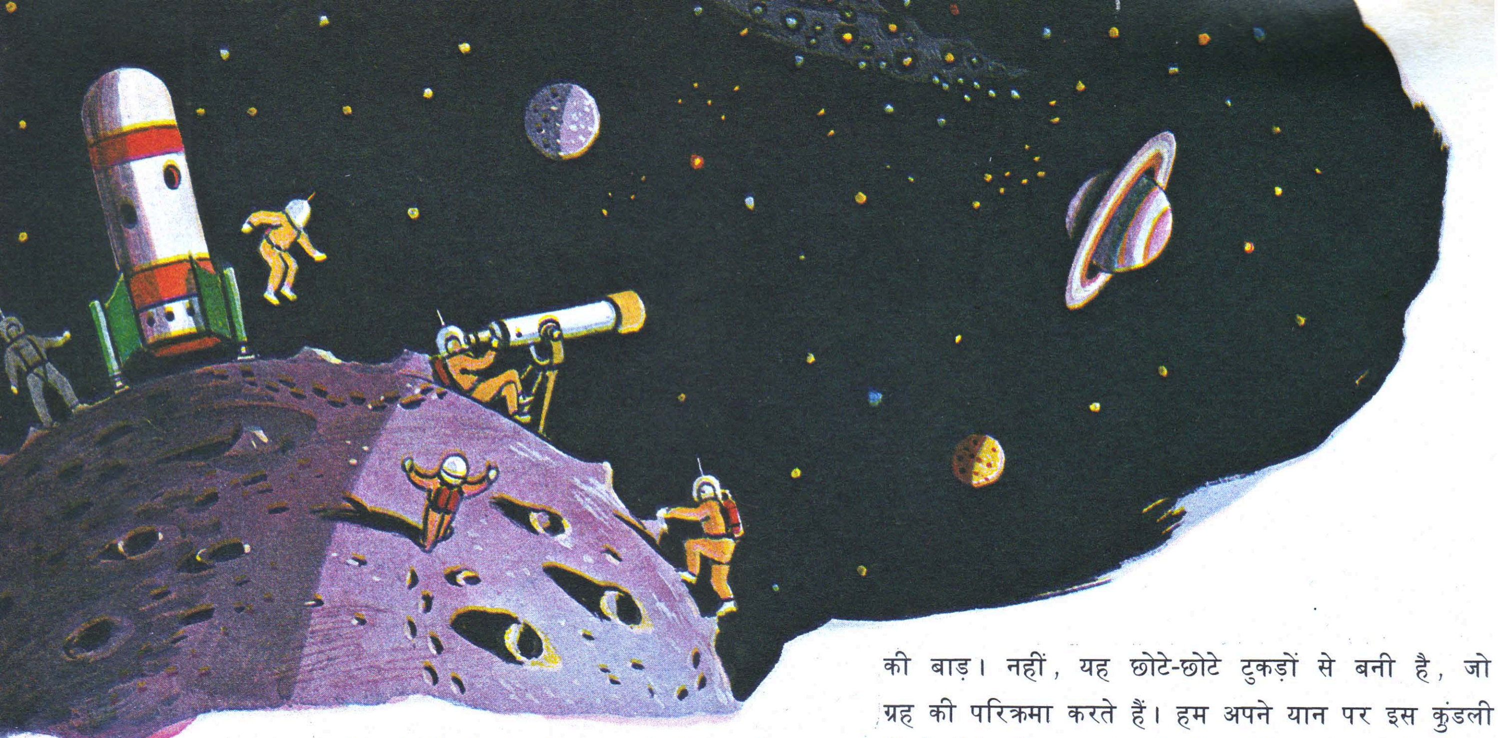
'इओ' – ज़ंग के रंग का गोला है। यह शायद अंदर से बहुत गरम है। इस पर सारा समय ज्वालामुखी के विस्फोट होते रहते हैं।

'यूरोपा' – चमकीला, सफ़ेद-सुनहरा उपग्रह है। यह बिल्कुल चिकना है, लेकिन दरारों से भरा।

'गेनिमीड' – सबसे बड़ा है। इस पर गहरी सफ़ेद धारियां फैली हुई हैं। लगता है यह बर्फ़ से बना है, जिस पर काली पर्पटी चढ़ी हुई है और इसे जगह-जगह किसी नुकीली चीज़ से तोड़ा गया है।

'कलिस्तो' – विशाल कत्थई उपग्रह है। इस पर कोई स्थान ऐसा नहीं है, जहां क्रेटर न हों।





बृहस्पति को देखने के लिए हम इओ पर उतरते हैं। यही ग्रह के सबसे पास है।

बृहस्पति अपनी धुरी पर बड़ी तेज़ी से घूमता है। इसलिए इसके बादल इसकी मध्यरेखा पर धारियों जैसे फैले हुए हैं। जैसे तेज़ बहती नदी की सतह पर धाराएं।

बादलों की ये धाराएं सदा एक दूसरी से आगे निकलती रहती हैं, उमड़ती-घुमड़ती हैं, रूप बदलती हैं।

एक स्थान पर बृहस्पति की सफ़ेद धारियों के बीच विचित्र लाल धब्बा नज़र आता है। लगता है कि जैसे नदी के तले से कीच उठता है वैसे ही यहां गहराई से लाल धुआं उठता है। लाल सुर्ख घटा सफ़ेद बादलों की धाराओं से ऊपर उठती है, उमड़ती है, कभी उज्ज्वल हो जाती है और कभी फीकी पड़ जाती है।

हो सकता है वहां बादलों तले विराट ज्वालामुखी का विस्फोट होता हो, कभी वह शांत पड़ जाता हो, और कभी फिर नयी शक्ति से जाग उठता हो।

तुम्हीं बड़े होकर यह पहेली सुलझाओगे।

आओ, अब आगे चलें।

अगला ग्रह है शनि। यह बृहस्पति से बहुत मिलता-जुलता है। उसकी ही भांति बादलों के विराट आवरण के बीच कहीं ठोस पिंड है।

शनि के चारों ओर कुंडली है जो इसकी शोभा न्यारी बनाती है।

यह मत सोचो कि यह कुंडली ठोस है, जैसे हैट की बाड़। नहीं, यह छोटे-छोटे टुकड़ों से बनी है, जो ग्रह की परिक्रमा करते हैं। हम अपने यान पर इस कुंडली में से वैसे ही गुज़र सकते हैं, जैसे आसमान से गिरते ओलों के बीच से। कुंडली की चौड़ाई लगभग २० किलो-मीटर है। हमारे यान को इस में से गुज़रने में एक मिनट भी नहीं लगेगा।

शनि सौर मंडल का सबसे सुंदर ग्रह है।

शनि के भी उपग्रह हैं। इनमें एक है टाइटेनस। यह बुध जितना बड़ा है और वायुमंडल से घिरा है। यह वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल से मिलता-जुलता है। शायद यहां पर जीवन हो?

शेष ग्रह रोचक नहीं हैं। यूरेनस और नेप्चून बृहस्पति जैसे हैं। प्लूटो तो ठंडा वीरान ग्रह है। वह सूर्य से अत्यधिक दूर है। इतनी दूर कि सूर्य की एक परिक्रमा करने में इसे २५० साल लगते हैं। सूर्य वहां से एक चमकीला तारा ही लगता है और कोई ताप नहीं देता।

प्लूटो हमारे सौर मंडल का अंतिम ग्रह है।

प्लूटो के आगे तारों तक निर्वात है।

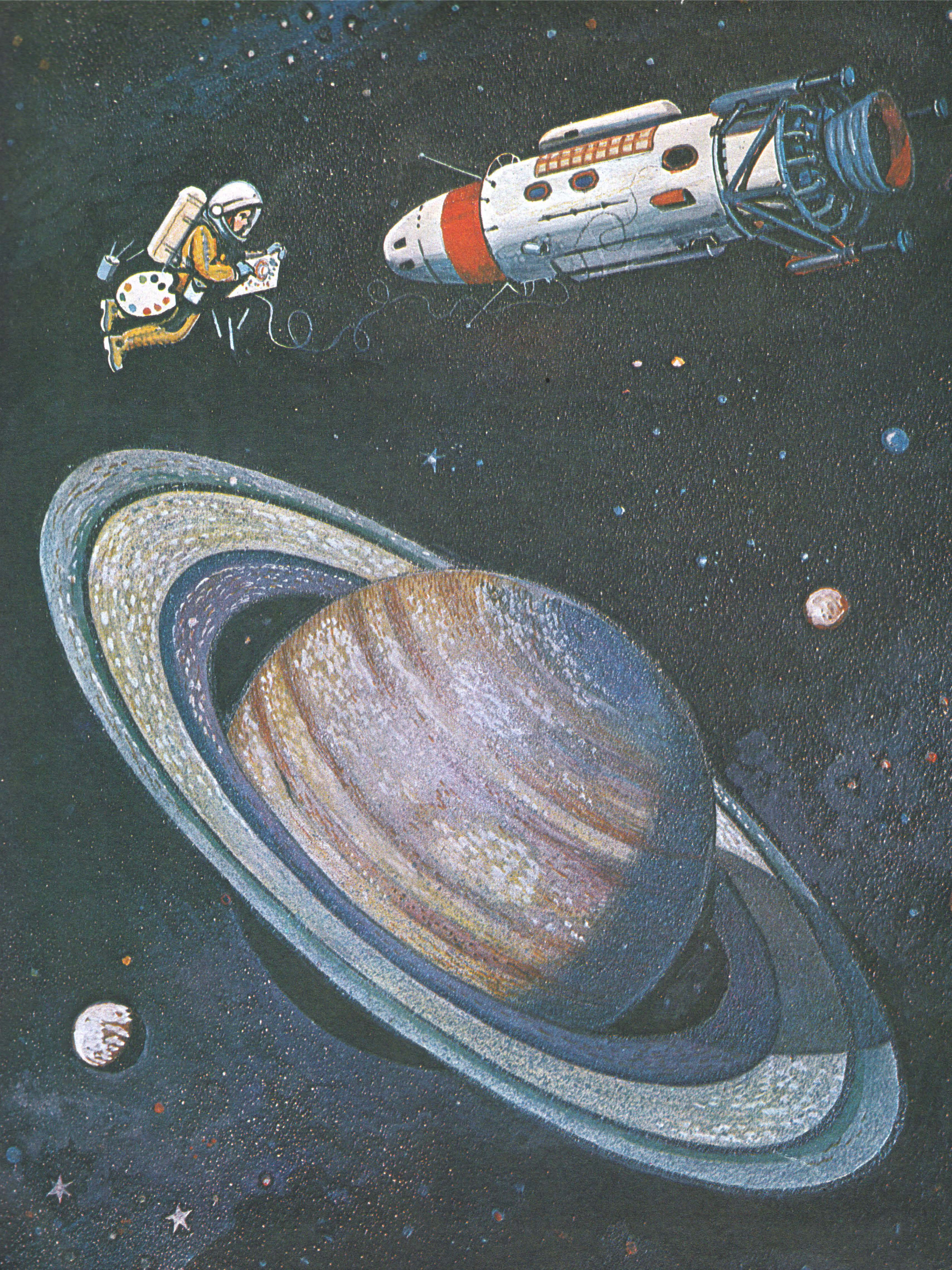
लेकिन हर तारा एक सूर्य है।

और शायद दूर के इन सूर्यों में बहुतों के अपने ग्रह हों।

इन में कुछ शायद हमारी पृथ्वी जैसे हों। हो सकता है वहां लोग रहते हों — हमारे ही जैसे।

लेकिन यह सब तो बहुत ही दूर है।

हम अपने पास के ग्रहों को भी अभी अच्छी तरह नहीं जानते!





लोग ग्रहों के बारे में अधिक कब जानेंगे ?

केवल टेलीस्कोप से ग्रहों को देखते हुए उनका अध्ययन करना बहुत मुश्किल था। लोगों की सदा यही कामना रही थी कि वे उन तक स्वयं पहुंच पायें। अपने हाथों से उन्हें टटोल सकें, अपनी आंखों से सब कुछ देख सकें, अपने कानों से सुन और अपनी नाक से सूंघ सकें।

कितना दिलचस्प होगा यह जानना कि दूसरे ग्रहों पर जीवन है या नहीं। किसी तरह की वनस्पतियां, कोई जीव हैं कि नहीं।

सबसे बड़ी कामना मनुष्य की यह रही है कि कहीं बुद्धिसंपन्न जीव उसे मिलें। कैसे होंगे वे ? हमारे जैसे ? या नहीं ?

ग्रह विराट, निस्सीम अंतरिक्ष में द्वीप हैं। उनके बीच करोड़ों, अरबों किलोमीटर की दूरी है। एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर कैसे पहुंचा जाये ? कौनसा वाहन वहां ले जायेगा ?

यह तो तुम जान ही गये हो कि न गुब्बारा और न हवाई जहाज़ इस काम आ सकते हैं। गुब्बारा हवा में उड़ता है। हवाई जहाज़ अपने पंखों से हवा पर टिका होता है। वे उतनी ऊंचाई तक ही पहुंच सकते हैं, जहां काफ़ी घनी हवा है, वायुमंडल पर्याप्त सघन है। जहां वायुमंडल विरल हो जाता है, वहां इन पर नहीं उड़ा जा सकता।

वायुमंडल में तो ग्रहों के रास्ते का केवल आरंभ ही होता है। आगे का सारा रास्ता निर्वात में होता है। लेकिन निर्वात को तो वैसे ही लांघा जा सकता है, जैसे हम नाली कूदकर पार करते हैं।

बड़ी देर तक लोग यह नहीं समझ पा रहे थे कि ऐसी छलांग कैसे लगायी जाये। कैसे इतनी तेज़ दौड़कर उछला जाये कि दूसरे ग्रहों तक पहुंच जायें। रूसी वैज्ञानिक कोन्स्तान्तीन एदुआर्दोविच त्सिओल्कोव्स्की ने ही सबसे पहले यह बताया कि राकेट पर ही ऐसी छलांग लगायी जा सकती है।

राकेट में ईंधन का विशाल भंडार कुछ मिनटों में ही जल जाता है। कर्णभेदी गरज के साथ आग राकेट में से पीछे निकलती है और राकेट को आगे धकेलती है।

छोटा-सा राकेट भी हज़ार रेल इंजनों जितना शक्तिशाली होता है।

इस कल्पनातीत बल की ही बदौलत राकेट आसानी से पृथ्वी से ऊपर उठ जाता है और बड़ी तेज़ी से उसकी रफ़्तार बढ़ती है। कुछ मिनटों में ही वह बादलों को पार कर लेता है, वायुमंडल में से अंतरिक्ष में निकल जाता है और वहां निर्वात में, जहां उसे कुछ नहीं रोकता भयंकर रफ़्तार पकड़ लेता है। तब वह जेट विमान से

५० गुना अधिक रफ़्तार से उड़ता है।

ऐसी कल्पनातीत गति से पृथ्वी के बंधनों से मुक्त होकर राकेट "चुप" हो जाता है। उसने छलांग लगा दी है। अब वह अंतरिक्ष के निर्वात में उड़ता जायेगा, वैसे ही जैसे खड्ड के पार फेंका गया पत्थर।

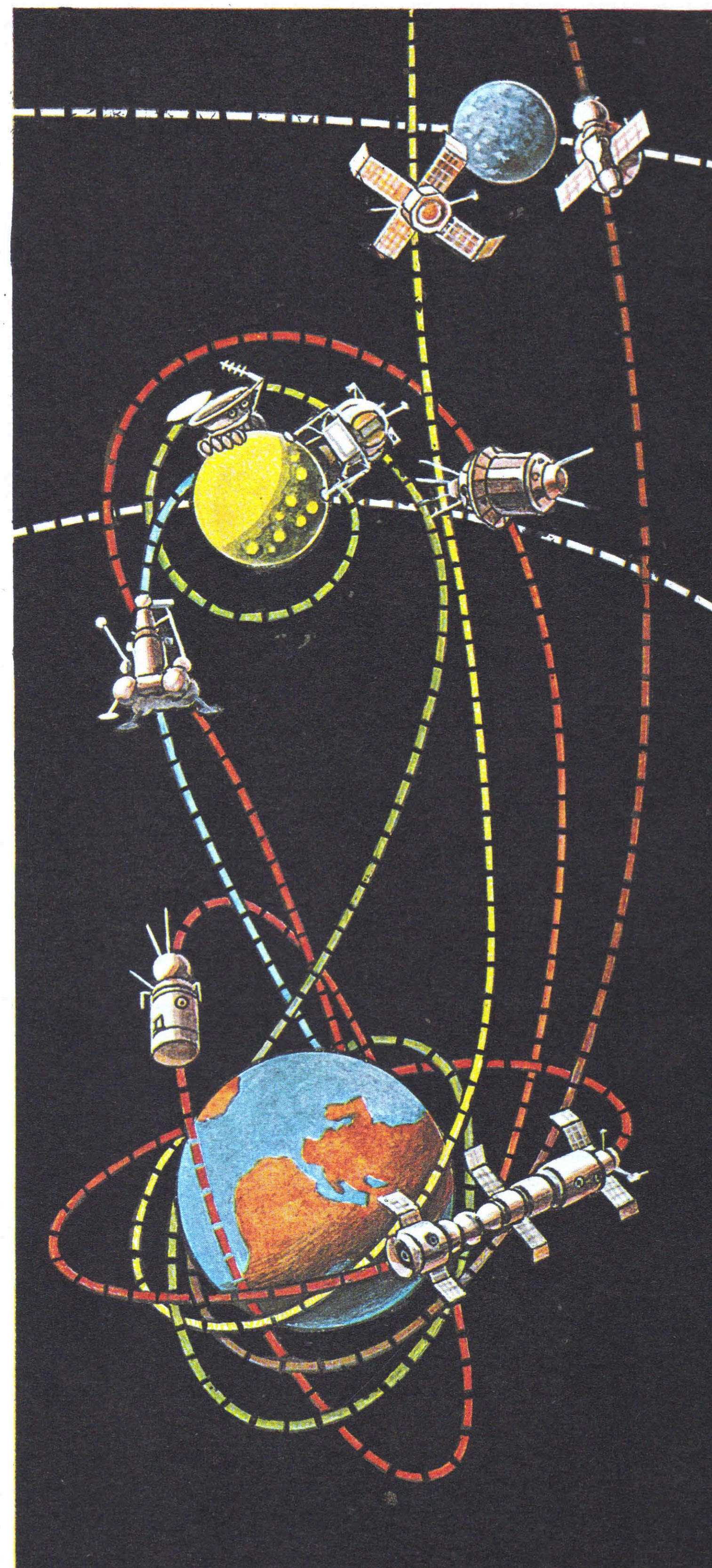
तुमने देखा होगा कि पत्थर सीधा नहीं जाता, बल्कि एक चाप बनाता है, पृथ्वी की ओर मुड़ता जाता है। अंतरिक्ष में राकेट भी सीधा नहीं उड़ता, बल्कि सूर्य की ओर मुड़ता जाता है। इसलिए राकेट को इस तरह छोड़ना चाहिए कि वह मुड़ते हुए आखिर वहीं पहुंचे जहां हम उसे पहुंचाना चाहते हैं। यह मत भूलो कि जिस ग्रह पर उसे पहुंचना है वह भी एक स्थान पर नहीं खड़ा है, बल्कि सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। इसका मतलब है, खाली स्थान को लक्ष्य बनाना चाहिए और ऐसा हिसाब करना चाहिए कि कुछ महीनों की उड़ान के बाद इस स्थान पर राकेट ग्रह से जा मिले।

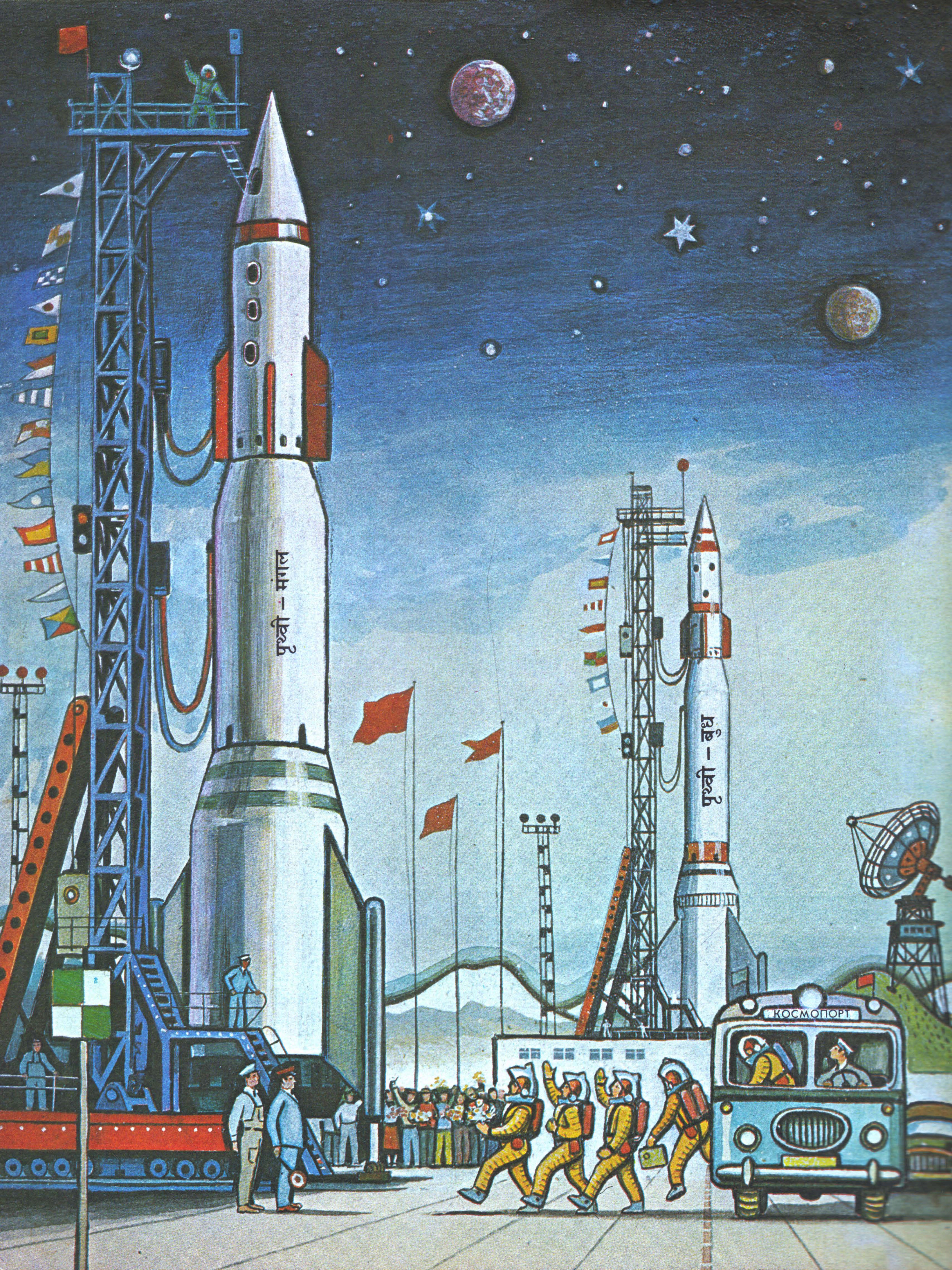
बहुत ही जटिल काम है यह। लेकिन इसे भी लोगों ने सीख ही लिया है। अभी तीस साल भी नहीं हुए जब १९५७ में सोवियत अंतरिक्ष अड्डे बाइकोनूर से पहला कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ा गया था। १९५९ में मनुष्य ने दूसरे ग्रहों को लक्ष्य बनाया। उसने पहली बार चंद्रमा को "छुआ" – सोवियत स्टेशन 'लूना-९' वहां उतरा। इसके बाद सोवियत और अमरीकी अंतरग्रहीय स्टेशन एक के बाद एक छोड़े गये हैं।

इन वर्षों में वे चंद्रमा, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि के पास पहुंचे हैं। अपने संवेदनशील उपकरणों से उन्होंने इन ग्रहों का पास से अध्ययन किया है, इनके फ़ोटो खींचे हैं, रेडियो से अपने कार्य के परिणाम और फ़ोटो हमें भेजे हैं।

चंद्रमा, शुक्र और मंगल पर तो वे उतरे भी हैं, इनकी मिट्टी और वायुमंडल की रचना का उन्होंने अध्ययन किया है, आस-पास के स्थान के फ़ोटो खींचे हैं। जीवन के चिन्हों की खोज की है। चंद्रमा की मिट्टी के नमूने पृथ्वी पर भेजे हैं।

इस सब का अर्थ यह नहीं है कि आज ही कोई भी व्यक्ति विशेष प्रशिक्षण पाये बिना राकेट में बैठ सकता है और किसी ग्रह पर, मान लो मंगल पर, जा सकता है।




पृथ्वी - मंगल
पृथ्वी - बुध
КОСМОПОРТ

मनुष्य बड़ा कोमल प्राणी है। अंतरिक्ष में उसे उतने ही ध्यान से भेजना चाहिए, जैसे किसी अमूल्य मछली को थल के रास्ते एक स्थान से दूसरे पर भेजा जाता है। मछली को पानी से भरे बर्तन में ले जाया जाता है और इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पानी बिखर न जाये, ज़्यादा गरम न हो जाये, गंदा न हो जाये। मछली को चारा देना भी याद रखना होता है।

अंतरिक्षयान मनुष्य के लिए "वायु से भरा बर्तन" है। इस "बर्तन" में आदमी का मछली से भी अधिक ख्याल रखना होता है।

यही कारण है कि शुरू से ही लोग जो-जो काम स्वचालित यंत्र कर सकते हैं, वे सब उन्हीं से कराने की कोशिश करते आये हैं।

अंतरिक्ष की टोह लेने का काम भी स्वचालित यंत्रों को सौंपा जाता है। जब स्वचालित यंत्र टोह लेने का काम पूरा कर लेते हैं तो आवश्यकता होने पर आदमी भी जा सकता है।

१२ अप्रैल १९६१ को पहला मानव सोवियत अंतरिक्षनाविक यूरी गगारिन अंतरिक्ष में गया।

२१ जुलाई १९६९ को पहले मानव ने चंद्रमा पर पांव रखा।

अंतरिक्ष में यानों को एक दूसरे से जोड़ना सीख लिया गया है। इसके बिना तो और आगे की अंतरिक्ष उड़ानें असंभव हैं।

पृथ्वी की कक्षा में सोवियत संघ के 'सल्यूत' और अमरीका के 'स्काईलैब' अंतरिक्ष स्टेशन काम करते रहे हैं। 'सोयूज़-अपोलो' की संयुक्त उड़ान हुई है। सोवियत अंतरिक्षीय समुच्चय 'सल्यूत-सोयूज़' अभी भी काम कर रहे हैं। इन पर अंतरिक्षनाविक और कामों के अलावा दूर की उड़ानों की तकनीक तैयार करते हैं।

यह सब ग्रहों पर उड़ानें भरने की तैयारियां ही हैं।

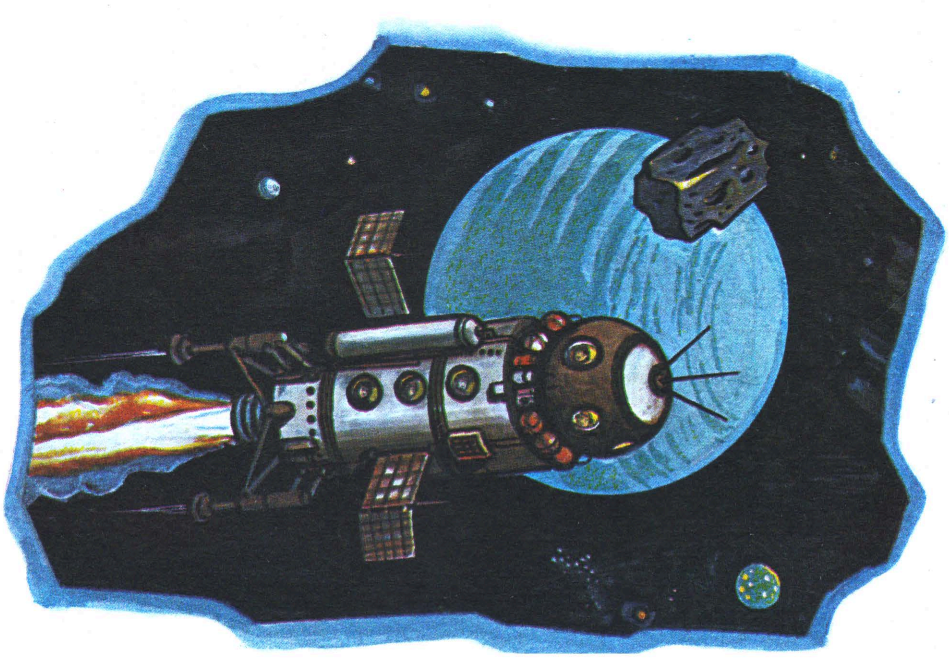
निकट भविष्य में भांति-भांति के नये-नये तथा अधिकाधिक जटिल अंतरग्रहीय स्वचालित स्टेशन बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति ग्रहों की ओर जायेंगे। वे टोह लेने का काम पूरा करेंगे। इसके बाद जब मनुष्य को पता चल जायेगा कि वहां क्या है, तब वह स्वयं भी वहां जायेगा।

लेकिन हर ग्रह पर मनुष्य की पहली उड़ान के साथ उसके विस्तार से अध्ययन का काम शुरू ही होगा। हम अपनी पृथ्वी का ही अध्ययन हज़ारों वर्षों से कर रहे हैं और अभी तक पूरी तरह नहीं कर पाये हैं। तो फिर दूसरे ग्रहों की क्या कहें?

उनका अच्छी तरह अध्ययन करने में बहुत समय लगेगा। वर्षों तक सैकड़ों अभियान दल, हज़ारों अनुसंधानकर्ता वहां जायेंगे।

अगर तुम चाहो तो तुम भी उनमें होओगे।

मनुष्य की जिज्ञासा का कोई अंत नहीं है! कितनी अच्छी बात है यह!









अनुक्रम



